Chapter-2

HANSA MEHTA LIBRARY

द्वितीय अध्याय

"सन् १९७० ई. के बाद के कुछ प्रमुख उपन्यास एवं उपन्यासकारों का परिचय"

सन् १९७० ई. के पश्चात् के उपन्यासों में एक नई क्रान्ति आई और चारों और विद्रोह का स्वर मुखरित हुआ। इस समयावधि में अनेक उपन्यासकारों ने लेखन कार्य किया, उनमें से ही कुछ उपन्यासकारों का परिचय एवं उनके प्रमुख उपन्यासों का अध्ययन हम इस अध्याय में करेगें। इस समय के प्रमुख उपन्यासकार निम्नलिखित है: –

२.१. भीष्म साहनी

२.२. शिवाजी सावन्त

२.३. जगदीश चन्द्र

२.४. रामदरश मिश्र

२.५. कृष्णा सोबती

२.६. चन्द्रकान्ता

२.७. श्री लाल शुक्ल

२.८. मैत्रेयी पुष्पा

२.९. डॉ. सूर्यदीन यादव

२.१०. प्रभा खेतान

२.११. अनामिका

२.१२. भगवान दास मोरवाल

२.१३. कमलेश्वर

SHRI HANSA MEHTA LIBRARY

२.१ भीष्म साहनी

२.१.१ भीष्म साहनी का परिचय

'भीष्म साहनी' का जन्म अगस्त सन् १९१५ ई. में हुआ। उनका जन्म स्थान रावलपिण्डी है। उनकी शुरूआती शिक्षा घर में ही सम्पन्न हुई। उनके स्कूल में उर्दू व अंग्रेजी दोनों की पढाई कराई जाती थी। लाहौर की सरकारी कॉलेज से इन्होंने अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया। एम.ए. करने के पश्चात् 'भीष्म जी' ने पंजाब विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. की उपाधि ग्रहण की। जब देश का बँटवारा हुआ, उससे पहले 'भीष्म जी' ने योग व्यापार किया, साथ ही साथ पढाने का काम भी किया। देश के बँटवारे के पश्चात् इन्होंने पत्रकारिता में काम करना शुरू कर दिया। इसके बाद दप्ता नामक नाटक मण्डली में भी काम किया। बाद में कुछ दिनों के लिए बिना काम के रहे। तत्पश्चात् फिर अम्बाला शहर के खालसा कॉलेज में अध्यापन का काम किया। इसके पश्चात् स्थायी रूप से दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य करने लगे। अध्यापन करने के साथ-साथ सात वर्ष तक विदेशी भाषा प्रकाशन गृह मास्को में अनुवादक के रूप में कार्य किया। करीब ढाई साल तक नयी कहानियों का सम्पादन किया। साथ ही साथ लेखक संघ तथा एफ्रोएशियायी संघ से सम्बद्ध रहे।

हम निसन्देह कह सकते हैं, कि उपन्यासकार 'भीष्म साहनी' की परिवारों के विघटन व तनाव पर अच्छी पैंठ है, इनके द्वारा तनाव का खुलकर अपने उपन्यासों में वर्णन किया गया है। अगर 'भीष्म साहनी' की अच्छी पहचान की बात करे, तो उसका श्रेय उनके उपन्यास *'तमस'* को जाता है। *'तमस'* से ही उनको सर्वाधिक सफलता मिली है। *'तमस'* ने ही उन्हें नई बुलन्दीयों पर पहुँचाया। उपन्यास *'तमस'* को साहित्य अकेडमी पुरस्कार से भी नवाजा गया।

२.१.२ प्रमुख साहित्य / कृतियाँ

सन् १९७० ई. के पश्चात् 'भीष्मजा' के बहुत से उपन्यास प्रकाशित हुए। कई उपन्यासों को तो महत्वपूर्ण प्रसिद्धी भी मिली। इनके प्रमुख उपन्यासों में *'कडियाँ'*, *'तमस'*, *'बसन्ती'*, *'मय्यादास की माडी'* आदि प्रसिद्ध है। *'कडियाँ'* उपन्यास में एक मध्यम वर्ग के परिवार की कहानी को कहा गया है। उस मध्यमवर्ग के परिवार से वैवाहिक सम्बन्धों में जो कडवाहट आ जाती है, उसका वर्णन है, साथ ही एक औरत की दयामयी स्थिती का भी वर्णन किया गया है।

मध्यम वर्ग के जो नियम होते हैं, उसमें एक औरत को कितनी पीडा व असहाय दुख सहन करने पडते हैं और इसी दुख को देना पुरूष अपना अधिकार समझते हैं। अतः हम इस उपन्यास के बारे मे कह सकते हैं, कि इसमें पुरूष प्रधान समाज में एक नारी पर किए जाने वाले अत्याचार का वर्णन है ।

'भीष्म साहनी' ने धर्म से सम्बन्धित साम्प्रदायिकता का सजीव चित्रण करने के साथ साथ उन कारणों पर विचार विमर्श करने पर अधिक जोर दिया है। हमारे देश का जो बँटवारा हुआ उसके विभिन्न कारण थे, उन कारणों का 'भीष्म जी' ने विस्तृत चित्रण किया। *'तमस'* में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले पंजाब राज्य में पैदा हुए साम्प्रदायिक लडाई-झगडों को अंकन किया गया है। 'भीष्म जी' उस बँटवारे के दुखद भोक्ता थे, उन्होंने वह सब देखा है, जो उस समय अमानवीय अत्याचार, धर्म को लेकर घटित हुए थे। अतः इस उपन्यास के चित्रण में एक दुखी भोक्ता होने का दर्द भी शामिल है। उपन्यास के एक पात्र (इकबाल सिंह) को धर्म परिवर्तन द्वारा सिंह से मुहम्मद बनाया जाना तथा सिक्खों और दंगाइयों के बीच जो झगडा हुआ, उसकी क्रूरता को दिखाना तथा साथ ही साथ लोगों के आत्मबलिदान के अंकन का अच्छा उदाहरण *'तमस'* में प्रस्तुत किया गया है। *'तमस'* के बारे में हम कह सकते हैं, कि *'तमस'* उपन्यास उस अंधकार का घोतक है, जो इन्सान की इन्सानियत और संवेदना को छुपा देता है और उसे इन्सान से हैवान बना देता है। उन्होंने इस उपन्यास में यह भी बताने की कोशिश की है, कि धार्मिक आग को फैलाने में अंग्रेजी शासक व उसके कुछ पिठ्ठुओं का महत्वपूर्ण हाथ था। ब्रिटिश शासन ने एक बनी-बनाई योजना के चलते साम्प्रदायिकता को हवा दी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले सभी धर्मो के लोग एक साथ भाईचारे के साथ रहते थे। पंजाब शहर के एक ही मुहल्ले में हिन्दू-मुस्लिम दोनों साथ रहते थे। हिन्दू मुस्लिम दोनों ही धर्मो के लोग एक दूसरे के सुख-दुख में साथ देते थे। अंग्रेजों को यह बात पसन्द नहीं आई और उन्होंने फूट डालने के लिए साम्प्रदायिकता का ऐसा माहौल बना दिया, कि प्यार-मोहब्बत सब नफरत में बदल गई। पास-पास रहने वाले पडौसी भी एक दूसरे के दुश्मन हो गए। इस साम्प्रदायिक लडाई के शिकार हिन्दू-मुसलमान अंग्रेजी शासन के खिलाफ लडने की बजाय आपस में ही लडाई-झगडा करने लगे। *'तमस'* में इस लडाई के शिकार हिन्दू-मुस्लिम नेता लोग नहीं होते, बल्कि आम आदमी होता है। जैसे इसका प्रभाव फतहचन्द की टाट पर काम करने वाला मजदूर कश्मीरी हत्तो होता है, गली-गली धूमकर दूध बेचने वाला मियाँ होता है, बूढा हरभजन भी इसका शिकार होता है, इकबाल सिंह भी शिकार

होता है और अगर सही शब्दों में कहें तो सैयदपुर के सभी लोग इसका शिकार होते हैं। साम्प्रदायिक दंगों के बडें ही क्रूर हालात होते हैं, पुरूष दंगों में मारे जाते हैं, तो उनकी औरते अपने बच्चों को लेकर कुएँ में कूद जाती है। इसमें साम्प्रदायिक लडाई दंगों की शुरूआत वहाँ से होती हैं, जहाँ से चालाकी कर अंग्रेंज अफसरों के इशारे पर मुरादअली द्वारा सीधे-सादे नत्थू से एक सुअर को मरवाकर और फिर मस्जिद की सीढियों पर डलवा देने की घटना से होती हैं। अत: यह सब होने के बाद क्रोध-डर, अविश्वास आदि भयंकर हिंसा का रूप ग्रहण का लेते हैं। ऐसे माहौल में जबकि इन्सानी पहचान खत्म हो जाती हैं, उस समय आदमी पशु के रूप में बदल जाता है। एहसान अली की बीबी राजो या फिर करीम खाँ जैसे नेकदिल आदमी इन सभी हैवानियत को झेलते हुए अपनी इन्सानियत को जिन्दा रखते हैं। इस प्रकार 'भीष्म जी' ने साम्प्रदायिक दंगों की चहल-पहल का अच्छा अंकन किया है। उन्होंने दंगों की असलियत को खोलने का काम किया है।

'भीष्म साहनी' का एक अन्य उपन्यास *'बसन्ती'* १९८० ई. में प्रकाशित हुआ। *'बसन्ती'* में 'भीष्म जी' ने महानगर दिल्ली का चित्रण किया है। दिल्ली में बनने वाली नयी-नयी कालोनियाँ व साथ में पास ही पडी हुई खाली जमीन पर काम करने वाले मजदूरों की झुग्गी झोंपडियाँ जो अनाधिकृत जगह पर बस गई है। इनमें नाई, धोबी, दर्जी आदि सम्मिलित है, उन्हीं का सजीव चित्रण उपन्यासकार ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इन बस्तियों में अगर देख, तो दूर के राज्यों से आने वाले राज्यों के लोग है, जो पैसे कमाने के लिए दिल्ली शहर आते हैं और फिर सडक किनारें बस्तियों में बस जाते हैं, शहर आये सभी लोगों के पास इतनी मात्रा में धन सामग्री नहीं होती की, वे अपना घर बना सकें। इसीलिए वे झुग्गी-झोंपडियों में बस जाते हैं। जिनका अपना कोई घर नहीं होता, सरकार उनकी कोई चिन्ता नहीं करती है, किन्तु जब एक अलग सी बस्ती बस जाती हैं, तो पुलिस की आँखों में खटकने लगती हैं और पुलिस उसे वहाँ से हटा देती हैं। इस पूरे समय में जो उन लोगों के साथ अत्याचार होता है, उसका जिक्र 'भीष्म जी' ने *'बसन्ती'* में किया है। 'भीष्म जी' के अनुसार इन बस्तियों में जो लोग बसते हैं, उनके दिल इस संकट को देखकर किस तरह दुखी होते हैं, समस्याएँ उनके सिर पर हमेशा नाचती रहती हैं, फिर भी एक-दूसरे से मिलकर सभी लोग रहते हैं, इसी को उपन्यासकार ने दिखाने की भरपूर कोशिश की है। इस पूरे परिवेश में एक केन्द्रीय पात्र बसन्ती ही महत्वपूर्ण हिस्सा है। वह इस वर्तमान व्यवस्था से अपने जीने का हक मांगती है। वह एक ऐसी भारतीय नारी के रूप में

उभरती है, जो सभी नारियों का प्रतिनिधित्व करती हैं और इस व्यवस्था से शोषण की शिकार होती हैं। जब एक औरत किसी के शोषण का शिकार होती हैं, तो उसके आस-पास के अपने रिश्तेदार भी उसका साथ नहीं देते। अपने सारे खून के रिश्ते भी बेमानी हो जाते हैं, किन्तु बसन्ती सारे शोषण सहन करके भी व्यवस्था के सामने घुटने नहीं टेकती अर्थात् वह हार नहीं मानती। वह उस भ्रष्ट व्यवस्था से विद्रोह करती है तथा उससे लडाई करती है। इस सभी अमावीय संवेदनाओं का सजीव चित्रण *'बसन्ती'* में हमें देखने को मिलता है।

'भीष्म साहनी' ने *'मय्यादास की माडी'* (१९८८) नामक उपन्यास में बीते हुए उस समय का वर्णन किया है, जिसमें ब्रिटिश साम्राज्य दिनोंदिन अपना फैलाव किए जा रहा था और सिक्ख समाज को उखाडता जा रहा था। १८४८ ई. में अंग्रेजों ने पंजाब राज्य पर अपना कब्जा कर लिया और पंज़ाब की धरती पर भी लूटखसोट प्रारम्भ कर दी। अंग्रेजी शासन स्थापित होते ही अंग्रेजों ने पुराने जमींदारों को हटा दिया, उनके स्थान पर नये जमींदारों को स्थापित कर दिया। नये जमींदारों ने अंग्रेजी शासन के प्रति वफादारी निभाकर गुलामी की हद तक राष्ट्र को पहुँचा दिया। नये जमींदारों का भी यही एक उद्देश्य बन गया, कि अंग्रेजों के साथ मिलकर किसानों व मजदूर वर्ग का शोषण करना है। किन्तु इन जमींदारों का राजपाट थोंडे ही समय के लिए चला, इसके बाद महाजनों व पूँजीपतियों का राजपाट स्थापित हो गया। अगर उपन्यासकार की माने, तो अंग्रेजी शासन इन्हीं महाजनों व पूँजीपतियों के सहयोग से पनपा है। अतः समय के साथ-साथ एक युवा पीढी ने इस व्यवस्था का खुलकर विरोध किया। उनकी नयी शक्ति ने शोषण के खिलाफ विद्रोह का ऐलान कर दिया। इन सभी का वर्णन गहरी संवेदनशीलता के साथ उपन्यास में अंकन किया है।

अतः हम यह कह सकते हैं, कि 'भीष्म जी' को असली प्रसिद्धी उनके उपन्यास *'तमस'* से ही मिली। *'बसन्ती'* के बाद के प्रकाशित उपन्यासों में 'भीष्म जी' को कोई महत्वपूर्ण उपलब्धि नहीं मिली। *'कुन्तो'* (१९९३) उपन्यास में औरत की नियति को पेश करने की कोशिश की गई है। इसमें कुन्तों पात्र के द्वारा स्त्री पीडा का वर्णन है। इस पुरूष प्रधान समाज में एक औरत को अपने पति को दूसरी औरत के साथ बाँटना पडता है और वह किसी से कुछ कह भी नहीं पाती। नारी की अशिक्षा और परम्पराओं को स्वीकार करने की विवशता को इसमें प्रस्तुत किया है। नयी पीढी के व्यक्ति अगर उन परम्परागत संस्कारों का विद्रोह करते हैं, तो वे अपने आप को लहूलुहान होने से नहीं बचा सकते।

हमारे भारत देश में हिन्दू व मुसलमान दोनों ही अपने संस्कारों से इस प्रकार जडीभूत है, कि दोनों ही एक दूसरे को अपनी रोटी व बेटी देना ही नहीं चाहते। उनका जुडना तो एक बहुत ही दूर का सपना है, मगर हिन्दू व मुसलमान युवक-युवती आपस में परम्पराओं को तोडकर विवाह बन्धन में बँध जाते हैं, तो वे इस समाजिक व्यवस्था को अपना कट्टर दुश्मन बना लेते हैं। दोनों धर्म अपने-अपने तरीके से उनके खिलाफ लडाई शुरू कर देते हैं। इस लडाई में दोनों ही धर्म किसी भी हद को पार कर जाते हैं, कितना भी घृणित से घृणित हरकतों को इस्तेमाल करने लगते है। जब भी ऐसी लडाई हुई है, उसमें हार हमेशा इन्सान की ही होती हैं। यही आज के भारतीय सामाजिक व्यवस्था का नंगा सच है, जिसका विस्तृत चित्रण 'भीष्म जी' ने *'नीलू नीलिमा नीलोफर'* में किया गया है।

'भीष्म जी' ने अपने सभी उपन्यासों में सामाजिक व्यवस्था की दयनीय स्थिती को दर्शाया है, किस प्रकार समाज अपने पुराने रीतिरिवाजों से अभी भी जकडा हुआ है। वह उससे अलग होना ही नहीं चाहता है, अगर कुछ लोग इसका विरोध करने की कोशिश करते हैं, तो उसे सामाजिक व्यवस्था कुचल कर रख देती है। नारी होना भी एक अभिशाप हो गया है। वह इस पुरूष प्रधान समय में अपने स्वयं को असुरक्षित महसूस करती हैं। इन सभी भावनाओं का 'भीष्म जी' ने सजीवता से चित्रण किया है।

२.२. शिवाजी सावन्त

२.२.१ शिवाजी सावन्त का परिचय

'भीष्म साहनी' के बाद हम 'शिवाजी सावन्त', जो मराठी के यशस्वी उपन्यासकार है, उनका अध्ययन करेगें। 'शिवाजी सावन्त' का पूरा नाम 'शिवाजी गोविन्दराव सावन्त' है। इनका जन्म ३१ अगस्त १९५० ई. को गाँव आजस जिला कोल्हापुर महाराष्ट्र में हुआ। माध्यमिक शाला के शिक्षाकाल में ही शिवाजी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी की कुछ परिक्षाएँ पास कर ली थी। वे बहुत ही गुणवान हुआ करते थे। 'शिवाजी सावन्त' अपना गाँव आजस व हाईस्कूल छोडकर महाविद्यालय की शिक्षा के लिए कोल्हापुर आ गए। महाविद्यालय की पढाई में उन्होंने हिन्दी में खासी रुचि होने के कारण उसको एक विषय के रुप में ले लिया। इन्होंने अपना लिखने का प्रारम्भ कविता से किया, किन्तु बाद में गद्य-लेखन में भी रूचि दिखाई। यह एक संयोग की बात है, कि एफ. वाय. बी. ए. में हिन्दी भाषा के जाने-माने कवि 'केदारनाथ मिश्र' का *'प्रभात का कर्ण'* नामक खण्डकाव्य पढने के लिए ले लिया। इन्होंने 'केदारनाथ जी' के कर्ण खण्डकाव्य को कई कई बार पढा और किशोरावस्था से सोए पडे अंगराज कर्ण उनके मन में खडे होकर जागृत हो गए। काफी सालों के चिन्तन मनन के पश्चात् 'शिवाजी सावन्त' को ने २७ वर्ष की अवस्था में ही अपने प्रथम उपन्यास *'मृंत्युजय'* (१९७४) का प्रकाशन किया। यह एक मराठी उपन्यास है। यहीं उपन्यास 'सावन्त जी' को लोकप्रियता की बुलन्दियों पर लेकर गया। इसका अनुवाद हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, राजस्थानी, कन्नड, तेलुगु, मलयालम, बांग्ला आदि अनेक भाषाओं में हो चुका है। 'शिवाजी सावन्त' का सांस्कृतिक उपन्यास *'मृत्युंजय'* आधुनिक भारतीय कथा साहित्य में मिलने वाला एक विरला ही चमत्कार है।

'शिवाजी सावन्त' अपने उपन्यास *'मृत्युंजय'* के लिए गुजरात राज्य सरकार द्वारा साहित्य अकादमी पुरस्कार (१९८२), भारतीय ज्ञानपीठ का मूर्तिदेवी (१९९५) पुरस्कार, आचार्य अत्रे प्रतिष्ठान पुरस्कार, जो पूणे सरकार द्वारा सन् १९९९ ई. में दिया गया आदि सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित हुए। इस उपन्यास ने विदेशों में सराहना पाकर इस समय भारतीय साहित्य जगत् में लोकप्रियता के शिखर को छू रहा है। इस प्रसिद्ध उपन्यासकार का १८ सितंम्बर २००० को मडगाँव (गोवा) में देहावसान हो गया।

२.२.२ प्रमुख साहित्य / कृतियाँ

'शिवाजी सावन्त' का प्रथम उपन्यास *'मृंत्युजय'* (१९७४) था। इस उपन्यास की रचना बडी ही अद्‌भुत है। करीबन चौदह साल की अवस्था में शिवाजी ने एक नाटक अपने साथ के छात्रों के साथ मिलकर खेला, जिसमें उसने कृष्ण की भूमिका निभाई। इनके स्कूल के मंच पर हमेंशा नाटक होते ही रहते थे। नाटक में जिसने भी पात्रों का चोला पहना सभी उतार कर अपने-अपने रास्ते चले गये, किन्तु 'शिवाजी' के मन में कर्ण ऐसे बस गए, कि वह उठने का नाम ही नहीं ले रहा था। उसके मन में कर्ण की उदारता ने उर्वराभूमि में जैसे नये सृजन का बीज बो दिया हो। जब 'शिवाजी' युवावस्था में पहुँचे, तो उन्होंने धीरे-धीरे कर्ण के चरित्र को कागज पर उतारने की कोशिश की और धीरे-धीरे यह उपन्यास आकार लेने लगा। सन् १९६७ ई. में यह उपन्यास मराठी में सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ। *'मृत्युंजय'* उपन्यास को पढकर सभी पाठकगण आश्चर्य चकित रह गए। *'मृत्युंजय'* के पश्चात् उन्होंने *'छावा'* की रचना की। दोनों उपन्यासों की कथावस्तु लेकर शिवाजी सावन्त ने दो और नाटकों की रचना भी की। उनकी अन्य उल्लेखनीय कृतियाँ *'लठत' (जीवनी), 'शेलका साज' (ललित निबन्ध),'संघर्ष' (नाटक), 'अशी मने अशे नमुने (रेखा-चित्र), 'मोरावला' (रेखा-चित्र)* हैं। अभी हाल ही में युगपुरुष कथा श्री कृष्ण के जीवन पर केन्द्रित उनका वृहत् उपन्यास *'युगन्धर'* प्रकाशित हुआ है। उनके उपन्यास *'मृत्युंजय', 'छावा', 'युगन्धर'* और नाटक *'संघर्ष'* के हिन्दी अनुवाद भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित है।

'मृत्युंजय' 'शिवाजी सावन्त' का सर्वोत्तम उपन्यास है। इस उपन्यास की कथा महारथी दानवीर कर्ण के व्यक्तित्व पर आधारित है। इसमें महाभारत के कई पात्रों के बीच 'शिवाजी सावन्त' ने जीवन की सार्थकता, उसकी मूल चेतना तथा मानव सम्बन्धों की स्थिति का मार्मिक और कलात्मक वर्णन किया है। इनके पात्रों में कृष्ण जी भी हैं, साथ ही कर्ण की उदार, ओजस्वी, दिव्य छवि प्रस्तुत करने की कोशिश की हैं। इस उपन्यास में प्राचीन और पारम्परिक कथाओं को लेकर उसको नयी आधुनिक शैली में ढालकर नये शिरे से नवीनीकरण किया गया है। इसमें प्राचीन कथा शिल्प को आधुनिक लय दिया गया हैं। *'मृत्युंजय'* मराठी उपन्यास है। किन्तु 'ओम शिवराज' ने उसका हिन्दी में अनुवाद किया है।

महाभारत के कई मुख्य पात्रों के बीच कर्ण को उसकी उदार व सर्वांगीण छवि इससे पहले कभी भी चित्रित नहीं की जा सकी थी। कर्ण, कुन्ती, दुर्योधन, वृबाली (कर्ण पत्नी), शोण और कृष्ण जैसे पात्रों वाला यह उपन्यास इतना लोकप्रिय हुआ, कि इसको महाराष्ट्र सरकार का केलकर साहित्य पुरस्कार प्राप्त हुआ। उपन्यास *'मृत्युंजय'* में उस समय का वर्णन है, जब महाभारत के युद्ध का समय पास आता है, तब श्री कृष्ण जी अर्जुन के सारथी बनने हेतू हस्तिनापुर आते हैं। श्री कृष्ण जी इस युद्ध को शान्त करने हेतु कौरवों की राजसभा में अपना समझौता प्रस्ताव रखते हैं। दुर्योधन व सभी कौरव इस प्रस्ताव को ठुकरा देते हैं। अतः महाभारत का युद्ध तो होना ही तय था। जब श्री कृष्ण हस्तिनापुर से वापस जाने लगते हैं, तब उन्हें छोंडने आये वीरों में से एक महारथी कर्ण भी थे। श्री कृष्ण कर्ण को अपने साथ चलने का आग्रह करते हैं, तथा फिर एक वटवृक्ष के नीचे जाकर बैठ जाते हैं। वहाँ पहुँच कर श्री कृष्ण जी कर्ण को उसके जन्म का रहस्य बताते हैं, तथा कर्ण को पाण्डवों की ओर से युद्ध करने की सलाह देते हैं, किन्तु कर्ण दुर्योधन का दिया वचन तोडना नहीं चाहते थे, इसलिए कृष्ण की सलाह को ठुकरा देते हैं। अतः श्री कृष्ण जी व कर्ण का जो मिलन का प्रसंग है, वह बडा ही हृद्य को छू लेने वाला है। इसके बाद अगर देखे, तो कर्ण व कुन्ती दोनों की जब गंगा किनारे भेंट होती हैं, उसका वर्णन भी हृद्यस्पर्शी है। माता-पुत्र दोनों के सम्बन्धों में प्रेम इतना गहरा है, कि देखने से ही बनता है। जब उनको पता चलता है, कि दोनों का सम्बन्ध माँ-बेटे का है, उसके बाद की यह प्रथम मुलाकात होती है। कर्ण ने इस सत्य को, कि उसकी माँ कौन है, यह जानने के लिए कई साल इन्तजार किया। दोनों माँ-बेटे इतने सालों के बाद मिले इसका वर्णन बडा ही मर्मस्पर्शी है। कुन्ती का मन पुत्रस्नेह से भर आता है और दोनों में वार्तालाप शुरु हो जाता है। *'मृत्युंजय'* में 'शिवाजी सावन्त' ने यही महाभारत के पात्र कर्ण को लेकर कथा वस्तु की रचना है।

२.३ जगदीशचन्द्र

२.३.१ जगदीशचन्द्र का परिचय

'जगदीशचन्द्र' का जन्म पंजाब के होशियारपुर के दलहन गाँव में हुआ। जब 'जगदीशचन्द्र जी' स्कूली पढाई करने लगे, तो उन्हें जिला होशियारपुर से जालंधर जाना पडता था। अत: जीवन से इनका सम्बन्ध धीरे-धीरे गहरा होता चला गया। जब उन्होंने पढाई पूरी की और नौकरी की तलाश में दिल्ली आये और यहाँ आने के बाद यहीं के हो कर रह गए। दिल्ली रहते वक्त इन्हें गाँव की याद बहुत सताती थी, धीरे -धीरे इनकी लेखन में रुचि बढने लगी और सर्वप्रथम इन्होंने उर्दू में *'पुराने घर'* नामक कहानी का लेखन किया, इसके पश्चात् एक पंजाबी नाटक *'उडीका'* का लेखन भी किया। वैसे तो 'जगदीश जी' का प्रथम उपन्यास *'यादों का पहाड'* सफल प्रमाणित हो चुका था, किन्तु इन्हें उपन्यासकार के रुप में प्रमाणित करने वाला उपन्यास *'धरती धन न अपना'* ही था।

'जगदीश जी' को पंजाब सरकार द्वारा शिरोमणि साहित्यकार के पुरस्कार से नवाजा गया है। सन् १९८१ ई. के इस सम्मान के अलावा 'जगदीश जी' को सरकारी व गैर सरकारी पुरस्कार भी मिल चुके हैं। 'जगदीश जी' के उपन्यास सामाजिक समस्याओं से ओत-प्रोत है और इन्होंने इन्हीं के विरोध में आवाज उठाई है।

२.३.२ प्रमुख साहित्य / कृतियाँ

इनका सर्वप्रथम उपन्यास *'यादों के पहाड'* १९६६ ई. में प्रकाशित हुआ। इसके बाद इनका दूसरा उपन्यास *'धरती धन न अपना'* १९७२ ई. में प्रकाशित हुआ। इसके साथ ही *'कभी न छोडें खेत'* की रचना की। नौकरी करते-करते इन्हें सेना के साथ भी काम आने का अवसर मिला, उसी दौरान 'जगदीशचन्द्र जी' ने *'आधापुल'* (१९७३) और *'टुंडा लाट'* (१९७८) की रचना की। दिल्ली में रहते हुए इन्होंने उसके आस-पास के गाँवों के साथ ही महानगरों में पैदा होने वाली समस्याओं का भी अपने उपन्यास में *'मुठ्ठी भर काँकर'* (१९७०) व *'धासट'* (१९८३) में काव्य विषय बनाया है। *'धरती धन न अपना'* का अनुवाद उर्दू, पंजाबी, रूसी तथा तमिल भाषाओं में भी हो चुका है। *'आधापुल'* का भी अंग्रेजी में प्रकाशन हो चुका है।

कुछ समय पहले ही एक नाटक *'नेता का जन्म'* भी प्रकाशित हुआ है। इसके पश्चात् *'नरककुंड में बास'* (१९९४) व *'लाट की वापसी'* (२०००) ई. में प्रकाशित हुए। *'कभी न छोडें खेत'* का नाट्य रुपान्तरण कर राष्ट्रीय नाट्य विधालय रंग मंडल की और से दिल्ली में सन् १९८४ व १९८५ ई. में खेला जा चुका है।

'जगदीश जी' का प्रथम उपन्यास *'यादों का पहाड'* सफल प्रमाणित हो चुका था , किन्तु इन्हें उपन्यासकार के रुप में प्रमाणित करने वाला उपन्यास *'धरती धन न अपना'* ही था। *'धरती धन न अपना'* में उपन्यासकार ने स्वतंत्रता के पूर्व पंजाब के गाँवों के दलितों की दयनीय जीवन स्थितियों का वर्णन किया है। उच्च समाज मिलकर नीचले वर्ग का शोषण करता है, यहीं इस उपन्यास में बताया गया है।

'आधापुल' उपन्यास सन् १९७३ ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में युद्ध का वर्णन किया गया है, इसके साथ प्रेम विषयक भावनावों का भी वर्णन किया गया है। वैसे तो इस उपन्यास में यह पता नही चल पाता, कि किस समय में व किससे युद्ध हो रहा है। उपन्यास को पढते समय यह तो स्पष्ट रूप से पता चल जाता है, कि युद्ध हो रहा है। परन्तु सामने कौन है, किस जगह हो रहा है यह पता नहीं चल पाता है। उपन्यास में युद्ध की तैयारी किस प्रकार होती है, यह बडे ही नाटकीय ढंग से बताया गया है। भारतीय सेना की मोर्चेबन्दी को भी बडी ही कुशलता से दर्शाया है। अन्त में जो भी युद्ध जीतता है, उसकी विजय होती है। *'आधापुल'* उपन्यास में सैनिकों के जीवन पर प्रकाश डाला गया है, कि वे किन–किन विषम परिस्थितयों में जीते हैं। कब कहाँ युद्ध हो जाये और अचानक इनको जान हथेली पर लेकर जाना पडता है। मध्य–मध्यान्तर में कैप्टन इलावत और सेमी की प्रेम कहानी भी फल–फूल रही होती हैं। दोनों के प्यार का भी मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। दोनों का प्रेम सेन्ना के मुख्यालय से प्रारम्भ होता है, धीरे–धीरे मुलाकातें बढती जाती हैं और प्रेम समय के साथ और भी गहरा हो जाता है। युद्धभूमि में भी दोनों के प्यार का वर्णन किया गया है। अन्त में कैप्टन इलावत जंग लडते लडते शहीद हो जाते हैं। वातावरण बडा ही हृद्‌यग्राही हो जाता है।

'मुठ्ठी भर कांकर' उपन्यास में 'जगदीश चन्द्र' ने पंजाब से आये शरणार्थियों का वर्णन किया है। दिल्ली के आसपास जहाँ ये शरणार्थी डेरा डालते हैं, वहाँ जाट लोगों का निवास है। जाट किसान जो बडे ही निडर हुआ करते हैं, किन्तु महाजनों व पुलिसवालों के सामने कचहरी के

मामलों में दयनीय स्थिति में आ जाते हैं। जैसे जैसे शरणार्थी वहाँ की जमीन पर अपना अधिकार जमा लेते हैं, वैसे ही जाट किसानों की स्थिति बेघर होने की आ जाती हैं। ये पंजाब के शरणार्थी बडी तबाही सहन करने के बाद भी साहसी व आक्रमक थे। जाट किसान इनके सामने टिक नहीं पाते हैं। शरणार्थियों के पास तीव्रगती जीने वाली जिन्दगी, जीविका कमाने की नयी तकनीक थी। उन्होंने जाट किसानों की अशिक्षा का फायदा उठाकर उनकी बडी ही उपजाऊ जमीन कौडियों के भाव में खरीद ली। इस उपन्यास में जाटों की दयनीय स्थिति का भी वर्णन हमे देखने को मिलता है।

'टुंडा लाट' उपन्यास का प्रकाशन १९७८ ई. में हुआ। इसमें भी 'जगदीश जी' ने प्रेम व युद्ध दोनों का एक साथ वर्णन किया है, इसमें बन्दूक और वायलिन को एक साथ अपना विषय बनाया है। उपन्यास का नायक पात्र कैप्टन सुनील, जो रोमिला नामक स्त्री से बेहद प्रेम करते हैं। युद्ध में भगवान उसके साथ क्रूर मजाक कर देते हैं, जिससे ना ही वह सैनिक रह पाता है और ना ही वह संगीतज्ञ रह पाता है। युद्ध के दौरान उसे दाहिने हाथ की अंगुलियाँ कटवानी पडती हैं। अत: उन अंगुलियों के बिना वह युद्ध व रोमिला के लिए बेकार हो जाता है। अन्त में उसकी प्रेमिका रोमिला भी उसका साथ छोड देती हैं। वह दुख के साये में डूब जाता है। *'टुंडा लाट'* में प्रेम व युद्ध का प्रसंग इतना नहीं उभर कर आया, जितना की *'आधापुल'* में उभरकर हमारे सामने आता है। *'टुंडा लाट'* में प्रेमी व प्रेमिका दोनों ही सैनिक है, छावनी में रहते-रहते दोनों में प्यार हो जाता है। किन्तु युद्ध का अन्त सुख और दुख दोनों ही साथ लेकर आता है, एक तरफ तो प्रेमी से बिछड जाने का दुख तो, दूसरी तरफ विजय का सुख। बस इन्हीं दोनों पहलुओं पर 'जगदीश जी' ने प्रकाश डाला है।

'घास गोदाम' उपन्यास १९८५ ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में भी इन्होंने पंजाब की पृष्ठभूमि को ही लिया है। इसमें मकान बनाने वाले निर्माताओं के धोखाधडी के बारे में बताया गया है, कि किस प्रकार भवन-निर्माता आम-जनता से पैसे खाकर भी मकान देने में छल-प्रपंच करते हैं। बडे-बडे भवन-निर्माता भी राजनेताओं व व्यापारियों के इशारे पर चलते हैं, वे जो कहते हैं, वहीं करते हैं और इनके साथ मिलकर भवन-निर्माता जनता के साथ धोखाधडी करते हैं, उनकी इसी आदत से जनता दुखी है। वह समस्याओं से घिरी रहती है, उनकी इन्हीं समस्याओं का चित्रण *'घास गोदाम'* में हुआ है।

अत: अन्त में हम यह समझते हैं, कि 'जगदीश चन्द्र जी' ने *'धरती धन न अपना', 'कभी न छोंडे खेत', 'मुठ्ठी भर कांकर', 'घास गोदाम'* आदि उपन्यासों में पंजाब के गाँवों की पृष्ठभूमि को आधार बना कर लिया है। वहाँ के दलित अत्यन्त निम्न वर्ग तथा जाट किसान दोनों की जिन्दगी का विस्तृत चित्रण इन्होंने अपने उपन्यास में किया है। जाट किसानों के बारे में शुरु से ही यह कहा जाता है, कि वे बात बात पर कट मरने के लिए तैयार रहते हैं, किन्तु उनकी इसी मूर्खताभरी प्रवृति ने उन्हें मुकदमेंबाजी में सारी धनसम्पत्ति व जमीन जायदाद से हाथ गंवाना पडा। उनकी झूठी शान निभाने की मनोंवृति हमें देखने को मिलती है। चाहे अन्दर कुछ हो नहीं परन्तु बाहरी दिखावा इतना करेंगे, कि वे ही यहाँ के राजा है। वर्षो से चले आ रहे पुराने लडाई-झगडों को सुलगाए रखना ही, इनकी मुर्खता की और इशारा करते हैं। देश विभाजन के बाद दिल्ली आसपास के गाँवों में पंजाबी शरणार्थी और बाद में जाट किसानों को बेघर करके उनकी जगह बस गए। उनकी सारी जमीन हडप ली और उन्हें पुश्तैनी जमीन से भी हाथ धोना पडा। अत: 'जगदीश जी' ने जाट किसानों, युद्ध व प्रेम आदि विषयों को ही अपना मुख्य विषय बनाया है।

२.४ रामदरश मिश्र

२.४.१ रामदरश मिश्र का परिचय

'रामदरश मिश्र जी' का जन्म १५ अगस्त सन् १८२४ को गोरखपुर जिले के एक गाँव डुमरी में हुआ। शिक्षा प्राप्त करने के लिए जब 'रामदरश मिश्र' गाँव से बाहर निकले तो कुछ समय तो यहाँ–वहाँ भटकते रहे, बाद में कहीं उन्हें शिक्षा प्राप्त करने में सफलता मिली। किन्तु यह सफलता उन्हें एकदम से नहीं मिली, बल्कि उसे पाने हेतु छोटी–छोटी पगडंडियों से गुजरना पडा। उनके सामने कोई निश्चय किया हुआ लक्ष्य नही था। 'मिश्र जी' छोटे–छोटे टुकडों में पढाई करते चले गए। इसी तरह अन्त में उन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय में लक्ष्य प्राप्ति हेतू शिक्षा प्रारम्भ की। इस विश्वविद्यालय से उन्होंने एम.ए. और पी.एच .डी. की डिग्री हासिल हुई।

२.४.२ प्रमुख साहित्य / कृतियाँ

'रामदरश मिश्र' ने जीवन के सफरनामे को दो भागो में लिखा। पहला खंड *'जहाँ में खडा हूँ'* आलोचको द्वारा काफी सराहा गया। अतः ततपश्चात् 'मिश्र जी' ने इनका दूसरा भाग *'रोशनी की पगडंडियाँ'* का लेखन किया। इनमें बताया गया, कि यहाँ सिर्फ एक लेखक के जीवन की जीवनी ही नहीं है, बल्कि उसके बहाने गाँव के जीवन के सुख और अर्न्तविरोध, संघर्ष का चित्रण किया गया है। लेखन में एम.ए. पास करने तक इन्होंने यात्रा की, उसी का जिक्र इस सफरनामें में किया गया है।

उनके प्रमुख कहानी संग्रह में *'खालीघर', 'एक वह दिनचर्या', 'सर्पदंश', 'बसन्त का एक दिन', 'इकसठ कहानियाँ'* है। कविता संग्रह में *'पथ के गीत', 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ', 'पक गयी है धूप', 'कंधे पर सूरज', 'दिन एक नदी बन गया', 'मेरे प्रिय गीत', 'बाजार को निकले हैं लोग' (गजल संग्रह), 'जुलूस कहाँ जा रहा है'* आदि है।

'रामदरश मिश्र' के प्रमुख उपन्यासों में *'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ', 'बीच का समय', 'सूखता हुआ तालाब', 'अपने लोग', 'रात का सफर', 'आकाश की छत', 'बिना दरवाजे का मकान', 'दूसरा घर'* आदि है। अतः अब हम इन उपन्यासों का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे।

'रामदरश मिश्र' का पहला उपन्यास *'पानी के प्राचीर'* १९६१ ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में 'मिश्र जी' ने उत्तर प्रदेश के पांडेपुरवा नामक गाँव का वर्णन किया है। पांडेपुरवा गाँव राप्ती, गर्रा व बरसाती नालों से चारो तरफ से घिरा हुआ है। वहाँ भी जनता निर्धनता, अशिक्षा, पिछडापन व जमींदारों के शोषण से लड रही थी। बस इन्हीं परिस्थितियों का वर्णन हमें *'पानी के प्राचीर'* में देखने को मिलता है।

इसके पश्चात् इनका दूसरा उपन्यास *'जल टूटता हुआ'* (१९६९) प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास *'पानी के प्राचीर'* का ही विस्तार कहा जा सकता है। 'मिश्र जी' का लगाव अधिकतर पूर्वी उत्तर के गाँवों से है, इसलिए उनकी अधिकतर रचनाओं में वहाँ के गाँवों व नदियों का वर्णन मिलता है। *'जल टूटता हुआ'* उपन्यास में भी एक ऐसे गाँव का वर्णन है, जो अभाव ग्रस्तता की मार झेल रहा है तथा चारों तरफ से घाघरा व राप्ती नदीयों से घिरा हुआ है। इस गाँव के लोग देश आजाद होने के बाद सुखी जीवन जीने के सपने देखते हैं।वहाँ की आम जनता सोचती है, कि देश आजांद होने के बाद उन्हें महीपसिंह जैसे जालिम जमींदारों से छुटकारा मिल जाएगा। सरकार इनको फाँसी की सजा दे देगी। किन्तु हुआ उनकी सोच से बिल्कुल विपरीत। महीपसिंह जैसे जमींदार सरकार से मिलकर कांग्रेस के मंत्री या फिर विधायक के पद पर चढ बैठे। इतना समय हो गया हमें आजादी मिले हुए, इसी पर *'जल टूटता हुआ'* उपन्यास को एक पात्र सुग्गन मास्टर जी कहते हैं, **'इतने साल हो गए आजादी मिले हुए,यह अभागी जिन्दगी टस से मस नहीं हुई।'** देश आजाद होने के पश्चात् भी निर्धनता ने वहाँ की जनता का पीछा नहीं छोडा। प्राइमरी स्कूल के हेडमास्टर सुगान तिवारी को कभी इस आजादी ने दो कुरते ओर तीन धोतियाँ तक नसीब नहीं करवाई। कभी भी उसे समय पर मासिक तनख्वाह नहीं दी जाती है। वहाँ का बनिया उधार सामान देने को तैयार नहीं होता, खेतों में कुछ पैदा नहीं होता, आखिर ऐसी परिस्थितियों में इन्सान करे भी तो क्या करें। स्वाधीनता दिवस समारोह के लिए मास्टरजी ने सभी को साफ कपडे पहन कर आने को कहा, साथ ही यह भी कहा कि **'हँसी खुशी के साथ आना'**। सभी छात्र साफ टोपी व कपडो के लिए अपनी माताओं से कहते हैं, किन्तु घरवाले निर्धनता की वजह से उन्हें ये सब उपलब्ध नहीं करवा पाते। अत: कागज की टोपियाँ पहनकर गीत गाते व हँसी पहने हुए चेहरे लेकर स्कूल पहुँचते हैं। उन सभी लडको के हँसीनुमा चेहरे के पीछे एक उपहास है, एक बेबसी भरी उदासी है। यह वही पीडा है, जिसे 'रामदरस मिश्र' ने अपने उपन्यास में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यह तस्वीर उन गाँवों की है, जिनकी जिन्दगी

में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की हरियाली नहीं आ पायी। खास कर पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के गाँव आज भी अभाव, शोषण और अन्धकार भरी जिन्दगी जी रहे हैं। उन्हें तो आजादी का असली मतलब भी समझ में नही आया है। बस अभी भी निर्धनता व अभाव भरी जिन्दगी जीए जा रहे हैं, पता नहीं वहाँ कब आजादी के सही मायने स्थापित होंगे।

'अपने लोग' सन् १९६२ ई. में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास भी 'रामदरश जी' के महत्वपूर्ण उपन्यासों में से एक है। इसमें गोरखपुर कस्बाई जिन्दगी का वर्णन देखने को मिलता है। कस्बों में शहर व गाँव दोंनो की विशेषताओं का मिलाजुला रुप होता है। *'अपने लोग'* उपन्यास के एक प्रमुख पात्र प्रमोद दिल्ली के कॉलेज की नोकरी छोडकर गोरखपुर के कॉलेज में रीडर का पद ग्रहण करता है। वह इसीलिए वहाँ आता है, कि वह पुन: अपने गाँव व बचपन से परिचित हो सकें। ज्यादातर कस्बों में विकास के नाम पर लाखों रुपए खर्च किये जाते हैं, किन्तु उसका दो तिहाई भाग तो कर्मचारी गण ही मार लेता है और बचा एक तिहाई भाग विकास के काम में खर्च होते हैं। सारे काले धन से बनी हुई मुख्य प्रमुख की कोठियाँ होती है। शिक्षा में अगर हम देखे तो स्कूल, कॉलेज दोंनों में ही गुटबन्दी व नेतागिरी की अधिकता है। वहाँ के नेता लोग चुनाव से पहले दो लम्बे चोडे भाषण देकर जनता के सामने हाथ जोडते हुए दिखाइ देते हैं, किन्तु सत्ता में आने के बाद एक दम गिरगिट की तरह रंग बदल लेते हैं और कभी दिखाई ही नहीं देते। प्रमोद पात्र भी खेती-किसानी को लेकर तो गाँव से जुडा है, किन्तु नोकरी पेशे के कारण शहर का हो गया है। इन दोनों के बीच तालमेल बिठाते हुए वह गोरखपुर जैसे कस्बाई जीवन को चुनता है। वहां के ठाकुर, वकील, इंजीनियर व ठेकेदार ही वहाँ के अभिजात वर्ग का निर्माण करते हैं, किन्तु सभी में भ्रष्टाचार फैला हुआ है। सरकारी रकम को लूट लेते हैं, गरीबों का शोषण करते हैं। आयकर चोरी करके अपनी कोठियाँ खडी करते हैं। आधुनिकता व पिछडेंपन का घिनौना मिश्रण ही इस गोरखपुर शहर की पहचान है। आजादी के बाद जो बदलाव आये तथा साथ ही साथ आधुनिकता ने भी गाँवों में अपनी जगह बना ली। गाँवों में शिक्षा तो मिलती है, किन्तु उसकी कोई दिशा ही नहीं होती है। युवा पीढी इस दिशाहीन शिक्षा के प्रति बडी ही उदासीन नजर आती है। आजकल के शहरों के जीवन में कोई ताजगी नहीं है, बल्कि सुस्ती भरी हुई है। पुराने जमींदार लोग अब भी अपने राजनीति का खेल खेलने से बाज नहीं आते, साथ ही मध्यम वर्ग की धन-धान्य में कमी होना आदि सभी गाँवों के चित्र *'अपने लोग'* उपन्यास में दिखाई पडतें हैं। इन सभी रंगो से यह उपन्यास पठनीय बना है।

'दूसरा घर' उपन्यास का प्रकाशन सन् १९८६ ई. में हुआ। *'दूसरा घर'* उपन्यास में 'मिश्र जी' ने गुजरात के एक शहर अहमदाबाद का परिवेश को अपना विषय बनाया है। जहाँ उत्तर प्रदेश के लोग जो गरीबी ओर बेरोजगारी से परेशान है। यहाँ अधिक मात्रा में रोजी-रोटी की तलाश में आते हैं। यहाँ से आने वाले मजदूर कुछ तो मीलों में काम करने लग जाते हैं, तो कुछ फुटपाथ पर चाय-पानी बेचने का काम करते हैं, तो अन्य होटलों में बर्तन साफ करने का कार्य करने लग जाते हैं। कहीं-कहीं हमें देखने को मिलता है, कि कुछ छोटे बच्चें होटलों पर चाय-नाश्ता देने आते हैं, वे सभी बेरोजगार मजदूरों के बच्चे होते हैं, जो अपनी गरीबी के लिए बचपन से ही काम करने लगते हैं। घरों में काम करने वाले नौकर, माली, चपरासी आदि से लेकर गुंडे, धन्धेबाज, हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण-शूद्र सभी तरह के लोग आते हैं। इस उपन्यास में हम देखते हैं, कि उत्तर भारत में सभी जातिवादिता, गरीबी, अशिक्षा तथा भ्रष्टाचार उत्पन्न हुए दिखाइ पडतें हैं। *'दूसरा घर'* उपन्यास में 'मिश्र जी' ने गुजरात के शिक्षा जीवन के हो रहे व्यवसायिकता व हिन्दी भाषी शिक्षकों के साथ वहाँ की शिक्षा व्यवस्था द्वारा किए जा रहे अमानवीय तथा बदले की भावना पूर्ण व्यवहार को भी दिखाया है। शिक्षकों की आपस में गुटबन्दी तथा प्राचार्यो को अफसर होने का धमंड आदि का अच्छा वर्णन जान पडता है। 'मिश्र जी' ने प्रवासी हिन्दू मजदूरों के साथ-साथ प्रवासी मुसलमान मजदूरों के जीवन की सच्चाई का चित्रण भी किया है, जो एक दूसरे से अलग नहीं है। हालांकि हिन्दू व मुसलमानों में धर्म अन्तर दिखाई नहीं देता। दोंनों की जिन्दगी में सभी समस्याएँ समान है, जिससे गरीबी, निर्धनता, अशिक्षा, शोषण, गन्दगी, विवशता आदि फैलती है। कुछ लोग तो यहाँ आकर जीविका न मिलने पर पेट की भुख मिटाने के लिये गुंडे का रुप धारण कर लेते है। एक भुखा भटका इन्सान कुछ भी करने को तैयार रहता है, जिसका राजनीतिक व व्यापारी लोग फायदा उठाते हैं और वह एक गुंडा बन जाता है। जब एक इन्सान दूसरे प्रान्त से यहाँ कमाने के लिए आता है, तो कुछ तो मजदूरी कर अपना पेट भर लेते हैं। कुछ होटलों पर काम करने लग जाते हैं, तो कुछ भुखमरी से तंग आकर चोर उचक्के का रुप धारण कर लेते हैं। बस इसी जिन्दगी की सच्चाई को इस उपन्यास में रामदरस मिश्र ने दिखने की कोशिश की है। आकार की दृष्टि से 'मिश्र जी' के तीन ही उपन्यास *'जल टूटता हुआ', 'अपने लोग', 'दूसरा घर'* उपन्यासों की श्रेणी में आते हैं, बाकी सभी उपन्यास लघु उपन्यास की श्रेणी मे आते हैं।

२.५ कृष्णा सोबती

२.५.१ कृष्णा सोबती का परिचय

'कृष्णा सोबती' हिन्दी में विश्वसनीय उपस्थिति के साथ साथ अपनी संयमित अभिव्यक्ति और साफ सुथरी रचनाओं के लिए जानी जाती है। उनका नाम लिखना ही उनका विशेष परिचय है। अत: हम कह सकते हैं कि उनका कम लिखना ही दरअसल विशिष्ट लिखना है। किसी भी युग में एक-दो लेखक ही ऐसे होते हैं, जिनकी रचनाएँ साहित्य और समाज दोंनों में ही एक घटना की तरह उजागर होती हैं और अपनी भावनाओं की उर्जा और कलात्मकता के लिए पढने वाले के मन को आश्वस्त करती है।

'कृष्णा सोबती' ने हिन्दी भाषा को एक विलक्षण ताजगी दी है। उनकी लोकनीय अस्मिता ने एक बडे पाठक वर्ग को अपनी ओर आकर्षित किया है। अत हम कह सकते हैं, कि निश्चय ही 'कृष्णा सोबती' ने हिन्दी में आधुनिक लेखन की शैली के प्रति पढने वालों के मन में एक नया भरौसा पैदा किया है। इन्होंने अपने साथ चलने व आगे आने वाली पीढीयों को मानवीय स्वतन्त्रता व नैतिक उन्मुक्तता के लिए प्रभावित ओर प्रेरित किया है। स्वयं के प्रति सचेत और सम्पूर्ण समाज के प्रति चैतन्य किया है। 'कृष्णा सोबती' को साहित्य अकादमी पुरस्कार से भी नवाजा गया है। इसके साथ-साथ अनेक राष्ट्रीय पुरस्कारों और अलंकरणों से शोभित 'कृष्णा सोबती' साहित्य की समग्रता में स्वयं को साधारणता की मर्यादा में एक छोटी सी लेखनी का पर्याय ही मानती है। वक्त को लांघ जाने वाले से कहीं अधिक उससे बडा होना चाहिए। साहित्य को जीने और समझने वाले प्रत्येक आस्थावान व्यक्ति की तरह यह निर्मल और निर्मल सत्य उनके सामने हमेशा उजागर रहता है।

२.५.२ प्रमुख साहित्य / कृतियाँ

'कृष्णा सोबती' ने अपनी बडी साहित्यिक यात्रा में अपनी हर नयी कृति के साथ अपनी क्षमताओं का भी वर्णन किया हैं। इनकी प्रमुख कृतियाँ निम्न है- *'डार से बिछुडी', 'मित्रो मरजानी', 'यारों के यार', 'दिलो-दानिश', 'दम दरामत', 'तिन पहाड', 'बादलो के घेरे', 'सूरजमूखी अँधेरे के', 'जिन्दगीनामा', 'ऐ लडकी'* और *'समय सरगम'* आदि। इन सभी

उपन्यासों में 'कृष्णा सोबती' ने जो बौद्धिक उत्तेजना, आलोचनात्मक विमर्श, सामाजिक और नैतिक ढंग से साहित्य संसार में कर दी है, जिसकी गूंज पाठको के मन में बराबर बनी रही है।

'कृष्णा सोबती' की प्रथम कथा कृति *'मित्रो मरजानी'* पहले किसी पत्रिका में एक लम्बी कहानी के रुप में प्रकाशित हुई, तत्पश्चात् सन १९६७ ई. में उपन्यास के रुप में प्रकाशित हुई। इस अठारह हजार शब्दों वाली और एक मध्यमवर्गीय पंजाबी परिवार जो पेशे से किसान है, की इकहरी कथा को उपन्यास माना जाए या फिर एक उपन्यासिका कहना संगत होगा। उपन्यास के नाम पर प्रकाशित 'कृष्णा सोबती' की दूसरी कथा पुस्तक *'सूरजमुखी अंधेरे के'* (१९७२) का भी आकार व कथावस्तु उपन्यास के पास नहीं पहुँचता है। *'मित्रो मरजानी'* व *'सूरजमुखी अंधेरे के'* की चर्चा खास रुप से साहसी लेखन के उदाहरण के रुप में हुई है, क्योंकि इससे पहले किसी महिला कथाकार द्वारा स्त्री के आचार-विचार का इतना साफ व मुहफट रुप से चित्रण नहीं हुआ था, जितना की 'सोबती जी' ने अपने उपन्यासों में किया। सातवें दशक के पूर्व काम के बारे में स्त्री लेखकों द्वारा लिखना बडा ही हिम्मत का काम माना जाता था। 'कृष्णा जी' एक ऐसी साहित्यकार है, जिन्होंने यह कार्य किया, इसलिए साहित्य जगत में उनका नाम है। आज उनकी चर्चा है।

'मित्रो मरजानी' का प्रकाशन १९६७ ई. में हुआ, इस उपन्यास को साहित्यकारों ने लघु उपन्यास कहा, तो किसी ने उपन्यासिका कहा, क्योंकि यह रचना बहुत ही छोटी रचना है। इसकी प्रमुख पात्र मित्रो है, जिसको इससे पहले साहित्य में कोई नहीं लाया था। मित्रो इसलिए भी खास है, कि वह बहुत सहज स्वभाव वाली है। मित्रो जैसे लोग भी पहले समाज में हुआ करते थे, बस उसी का वर्णन 'कृष्णा सोबती' ने *'मित्रो मरजानी'* उपन्यास में किया है। इस उपन्यास में एक ऐसे परिवार की कहानी कहीं गई है, जो आज भी पुराने रीती रिवाजों के साथ जी रहा है। किन्तु बाद में इसमें एक ऐसी युवती का आगमन होता है, जो विस्फोटक व मुहँफट बाते ही मुँह से निकालती है। अपने इसी आचरण से वह सारे घर में उथल-पुथल मचा देती है। *'मित्रो मरजानी'* एक नीरस पडी मध्यवर्गीय संस्कृति के सामने सब कुछ दाँव पर लगा देने वाली नारी का विद्रोह है। मित्रो परम्पराओं से टकराती है व उसका विद्रोह भी करती है। बस इन्हीं का वर्णन *'मित्रो मरजानी'* में किया गया है।

सन् १९७५ ई. में 'कृष्णा सोबती' के एक अन्य उपन्यास *'सूरजमुखी अंधेरे के'* का प्रकाशन हुआ। इस उपन्यास के बारे में हम कह सकते हैं, कि आधुनिकता की जमीन पर मनोवैज्ञानिक पहेलियों को बडी ही सादगी के साथ इस उपन्यास में आँका गया है। इस उपन्यास की एक स्त्री पात्र, जो काम वासना की शिकार है। बचपन में ही उसका किसी आदमी द्वारा बलात्कार हो जाता है। अन्य सभी लोग उसके बारे में तरह तरह की बातें करते हैं, कुछ कहते हैं, कि वह इतनी मनहूस है, कि उसके पास पहने कपडों के सिवा गरमाहट ही नहीं है। वह हमेशा किसी का इन्तजार करती है, कि कोई तो उसकी जिन्दगी में होगा। किन्तु उसका इन्तजार बस सिर्फ इन्तजार ही रह जाता है। वह स्वयं को आइने में देखती है तथा पथरीली अहिल्या के समान दिखाई पडती है, जो न तो पिघलती है, न टुटती है और न ही छोटी बडी होती है। जब उसका विवाह होता है, तो विवाह से पूर्व ही प्रेमी पति की मृत्यु हो जाती है। अत: उसका जीवन मुक, गहरी पीडा, मनोवैज्ञानिक तनाव आदि सभी परिस्थितियों से गुजरता है।

'जिन्दगीनामा' सन् १९७९ ई.में प्रकाशित हुआ। इसमें बीसवीं शताब्दीं के आरम्भ में पंजाब के जमींदारो व किसानों और साहूकारों के जीवन का चित्रण किया गया है। 'कृष्णा सोबती' ने इस उपन्यास में हिन्दी व पंजाबी भाषा का भरपूर प्रयोग किया है। *'जिन्दगीनामा'* बीसवीं शताब्दी के पहले के पन्द्रह सालों में पंजाब के ग्रामीण किसानो के जीवन में हो रहे उलट फेर का चित्रण है। पंजाब के किसानों का स्वभाव थोडा अक्कडपन से भरा होता है, वे मेहनत कर व उससे सन्तुष्ट जिन्दगी जीते हैं। इन किसानों पर महाजनों का शोषण भी कोई ज्यादा असर नहीं डालता। इन पर पुलिस भी आतंक मचाती है, किन्तु इनके जीवन में कोई खास हलचल नहीं होती हैं। किसानगण मर्द गाँवों से अलग, सहयोग और सहभावना लिये हुए, हँसी खुशी के साथ जीते हुए, छोटे–छोटे गमों का सामना करते हुए अपना जीवन यापन करते हैं। सभी पंजाबी किसान एक–दूसरे के सुख व दुख दोंनो में महाजनों का शोषण उनकी जिन्दगी में हलचल मचा देता है, किन्तु वे सभी उसके मिलकर डटकर सामना करते हैं। अपनी लगन व मेहनत से अपने पेट भरने वाले वहाँ के किसान–मजदूर लोग आन्तरिक मन में सन्तुष्टि लिए हुए रहते हैं। उपन्यास के अन्त में जब प्रथम विश्वयुद्ध हो रहा था, तब अंग्रेजी सरकार द्वारा गाँववालें को सेना में जबरन भर्ती का चित्रण है। ब्रिटिश सरकार जबरदस्ती लोंगो को अपनी सेना में भर्ती करती थी, क्योंकि ज्यादातर अंग्रेजी सेना में भर्ती होना नहीं चाहते थे। वे उन्हें भारत का दुश्मन समझते थे, इसलिए उन्हें जबरन भर्ती किया जाने लगा। युद्ध के समय जिस धन–राशि की

जरुरत पडती थी, उसे किसानों पर लगान लगाकर वसूल किया जाने लगा। लगान बडी मात्रा में लिया जाने लगा, जिससे उनका जीवन दूभर हो गया। कुछ क्रान्तिकारियों में ब्रिटीश सरकार का विरोध करने की कोशिश की, उन्हें दमनकारी रवैये से दबा दिया गया। अतः क्रान्तिकारी दल जब जब अंग्रेजी हुकूमत का विरोध करते, सरकार उन्हें वही रोंद देती थी। क्रान्तिकारियों को इतनी बुरी तरह सजा दी जाती थी, कि रोगटें खडे हो जाते थे। उनके थोडे से गुनाह की सजा बहुत बडी दी जाती थी। किन्तु फिर भी क्रन्तिकारियों ने हार नहीं मानी, हमेशा अंग्रेजी सरकार के सामने डटकर खडे रहे। जिसका आगाज आज हम स्वतन्त्र होकर स्वतन्त्र जीवन जी रहे हैं।

'दिलोदानिश' उपन्यास १९९३ ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में हवेली परम्पराओं का चित्रण किया गया है। भारत में जब मुस्लिम शासन फल-फूल रहा था, तो यहाँ हिन्दु व मुस्लिम लोगों की मिली-जुली संस्कृति विकास कर रही थी। इस संस्कृति में सामान्य रईस व जमींदार लोग शामिल थे। 'कृष्णा सोबती' ने *'दिलोदानिश'* में मुस्लिम परिवेश में एक व्यक्ति की उलझी हुई जिन्दगी का चित्रण किया है। इस उपन्यास में हवेली ओर फराशतखाना दोंनो का वर्णन देखने को मिलता है। हवेली के भी अपने नियम-कानून होते थे, जिसमें स्वयं की भावनाओं को कोई स्थान नहीं मिलता था, अर्थात् एक व्यक्ति को हाथ में सभी लोगों की डोर होती थी, वही सही गलत का निर्णय करता था। फराशतखाने की अगर बात करे तो यहा मर्द लोग ऐय्याशी करते थे और औरते दुख ग्रस्त जीवन जीने को मजबूर थी। यहाँ जब एक आदमी किसी के बच्चे का बाप बन जाता था, तब स्थिति और भी संघर्षपूर्ण हो जाती थी। अतः अवैध सन्तान की समस्या को बडी ही गहरी संवेदना के साथ प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है। धन समस्या को लेकर हमेशा कलह होते रहते हैं। फराशतखानें वाली स्त्रियाँ रईस बच्चों की माँ का हिस्सा नही बन पाती थी।

अतः 'कृष्णा सोबती जी' ने अपने सभी उपन्यासों में अलग अलग भावनाओं का वर्णन किया है। सभी उपन्यास आधुनिकता लिए हुए है। इनके उपन्यास नयी-नयी समस्याओं का चित्रण करते हैं, जो अबसे पहले किसी ने ही किया है।

२.६ चन्द्रकान्ता

२.६.१ चन्द्रकान्ता का परिचय

'चन्द्रकान्ता जी' का जन्म श्रीनगर (काश्मीर) में १ सितम्बर सन् १९३८ ई. में हुआ। 'चन्द्रकान्ता जी' की ज्यादातर शिक्षा श्रीनगर में ही हुई, बाकि कुछ शिक्षा उन्होंने राजस्थान से ग्रहण की। उन्होंने श्रीनगर के कॉलेज से बी. एड. की शिक्षा ग्रहण की तथा इसके पश्चात् इन्होंने राजस्थान राज्य के पिलानी से हिन्दी साहित्य में एम. ए. किया।

'चन्द्रकान्ता जी' की एक प्रमुख आदत है, कि जब तक उनकी कोई कृति एक सम्पूर्ण आकार नही ले लेती, उन्हें बेचैनी सी होती है। उन्हें आधा-अधूरा कार्य पसन्द नहीं है, अगर किसी काम के पीछे वे पड जाती है, तो उसे पूरा किये बिना उन्हे चैन नही मिलता। इनके समस्त उपन्यास संवेदनाओं व अहसासों की मानसिकता से ओतप्रोत है। सभी में सत्य को खोजने की कोशिश 'चन्द्रकान्ता जी' ने की है। 'चन्द्रकान्ता जी' का मानना है, कि कुछ ऋण ऐसे होते हैं, जिन्हें हमें चुकाना ही पडता है। उसे बिना चुकाए हम जी नहीं सकते। ताउम्र इन्सान को दूसरों का ऋण उतारने के लिए जीना पडता है, फिर भी ऋण नहीं चुकता । पीढी दर पीढी उनका बोझ ढोया जाता है और सबसे बडी आश्चर्य की बात यह है, कि आज के इस बदलते परिवेश में इसे धर्म व कर्त्तव्य कह कर पुकारा जाता है। 'चन्द्रकान्ता जी' ने अपनी सभी रचनाओं में सच्चाई को सामने लाने की भरपूर कोशिश की है।

२.६.२ प्रमुख साहित्य / कृतियाँ

'चन्द्रकान्ता' की प्रथम कहानी सन् १९६७ ई. में प्रकाशित हुई। इसके पश्चात् *'सलाखो के पीछे', 'गलत लोगों के बीच', 'दहलीज पर न्याय', 'पोशनूल की वापसी', 'ओसोनकिसरी', 'कोठे पर कागा', 'सूरज उगने तक', 'काली बर्फ'* आदि कहानियां प्रकाशित हुई।

इनके प्रमुख उपन्यासों में *'अर्थान्तर', 'अन्तिम साक्ष्य', 'बाकी सब खेरियत है', 'यहां विस्ता बहती है', 'अपने-अपने कोर्णाक', 'कथा-सतीसर'* आदि है। *'यहीं कहीं आसपास'* इनका प्रमुख कविता संग्रह है।

उपन्यास *'अर्थान्तर'* और *'अन्तिम साक्ष्य'* दोनों ही एक साथ सन् १९८१ ई. में प्रकाशित हुए। *'अर्थान्तर'* में एक स्त्री को लेकर कथ्य विषय बनाया गया है। वह स्त्री संवेदनशीलता से ओतप्रोत है, किन्तु उसका मन एक जगह स्थिर नही रहता है, बल्कि हमेशा इधर-उधर भटकता रहता है। उसकी भावनाओं को कभी ठहराव नहीं मिलता है और उसका कभी पीछा नही छोडता है, बैचेनी ही तडपाती रहती है। बस इसी का वर्णन चन्द्रकान्ता ने अपने उपन्यास *'अर्थान्तर'* में किया है। उपन्यास *'अन्तिम साक्ष्य'* में उसकी काथ्य व कथा जैसे दोनों ही बिखर गए, कहें तो बिखराव के शिकार हो गए हैं। *'बाकि सब खेरियत है'* का प्रकाशन १९८३ ई. में किया। इसमें 'चन्द्रकान्ता' ने पारिवारिक सम्बन्धों की चर्चा की है, किस प्रकार बडे-बडे परिवारों में रुढिवादिता व परंपराये हमेशा पनपती रहती है। अन्धविश्वास भी अपनी जडें ओर गहरी करता चला जाता है। मध्यवर्गीय लोगों का जीवन व्यक्तिगत स्वार्थ से किस प्रकार मिला होता है, उसका वर्णन *'बाकि सब खेरियत है'* में किया गया है। परिवार के सभी लोग विदेशी लोगों की मानसिकता से ग्रस्त हो जाते हैं तथा आधुनिक दृष्टि से ही अपना जीवन जीना चाहते हैं। ऐसा करने पर परिवारिक परंपराये टूटने लगती है और परिवार का माहौल नाटकीय रुप में बदल जाता है। कुछ पात्र उसका साथ देते हैं, तो कुछ अन्धविश्वास से भरे होते हैं, वे अपनी रुढिवादी परंपराओं को त्यागने को तैयार ही नहीं होते हैं। अतः अन्त में आधुनिक व परंपरागत नैतिक मूल्यों का आपसी टकराव से परिवार बिखर जाते हैं।

'ऐलान गली जिन्दा है' उपन्यास 'चन्द्रकान्ता जी' का १९८४ ई. में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास इनका सर्वप्रमुख उपन्यास है, इसमें इन्होंने अपने मन की अपूर्णता को पूर्णता देने का प्रयास किया है। इसकी पृष्ठभूमि में श्रीनगर की ऐलान गली का वर्णन किया गया है। श्रीनगर में एक गली, ऐलान गली नाम से जानी जाती है, उसमें कई परिवार पीढियों से एक साथ रहते हैं, एक साथ जीते हुए आए है। इस सम्पूर्ण परिवेश को 'चन्द्रकान्ता जी' ने बहुत ही गहरे दर्द के साथ चित्रित किया है। इसमें बताया है, कि रोजी-रोटी की तलाश में युवा पीढी इस गली से जाने लगती है, किन्तु बाहर निकलने पर भी युवा वर्ग अपनी संस्कृतियों को नही भूलते हैं। गली धीरे-धीरे खाली हो रही हैं, किन्तु अपनी राजनीतिज्ञ विशेषताओं में आज भी जिन्दा है। कहा जाता है, कि पृथ्वी पर कही स्वर्ग है, तो वह कश्मीर ही है और इस उपन्यास *'ऐलान गली जिन्दा है'* में उसी स्वर्ग का वर्णन किया गया है। आज इस स्वर्ग में दरिद्रता, अशिक्षा जैसे अभावों में लोग जीने को मजबूर है। ऐसे ही अभावों से गुजर रहे लोगों की संस्कृति व उनके जीवन के संघर्षो

का बडा ही अच्छा चित्रण देखने को मिलता है। आज इस गली के लोगों का जीवन किन–किन समस्याओं से जूझ रहा है और इसी तरह जीने को मजबूर है। किन्तु मूल बातें इस उपन्यास में भाईचारे का प्रतीक बनकर हमारे सामने आती। हम कह सकते हैं, कि आज जहाँ धर्म, जात–पात और भाषा के नाम पर जहाँ इन्सान–इन्सान के बीच एक दीवार खडी की जा रही हैं, वहां पर *'ऐलान गली जिन्दा है'* उपन्यास के पात्र अनवर मियाँ, दयाराम मास्टर, संसारचन्द आदि लोग हिन्दु–मुस्लिम एकता बनकर प्यार के प्रतीक के रुप में सामने आते हैं। उससे हटके अगर हम देखे, तो दूसरी और युवा पीढीं है, जो रोजगार की खोज में बडे–बडे शहरों की तरफ भाग रही हैं। इस उपन्यास में कुछ ऐसे ही पात्र है, जो युवापीढी का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। इनमें से एक अवतारा है, जो सभी को शहर जाने की सलाह देता रहता है। अवतारा को स्वयं काम की तलाश में बम्बई जाना पडता है। महानगरों की चमचमाती रोशनी में वह स्वयं को अजनबी व अस्तित्वहीन सा महसूस करता है, वहाँ उसे कोई भी अपने नजर नही आते हैं। सभी बाहरी आवरण ओढे लोग वहाँ मिलते हैं, जिनमें अपनापन नही नजर आता। तब उसके दिल को ऐलान गली की याद आती है, वह उसके प्यार को बार–बार, रह–रह कर याद करता है। इस उपन्यास में संसारचन्द जैसे पंडित लोग भी निवास करते हैं, जो हर सुबह श्लोकों व पाठों से दिन की शुरुआत करते हैं, किन्तु धन की जरुरत उन्हें मन्दिर के दान पात्र से पैसे निकालने से नही रोक पाती हैं। दूसरी तरफ अर्जुननाथ जैसे कँजूस लोग भी है, जो सवेरे–सवेरे रोटी का चौथाई हिस्सा कुत्ते को खिलाते हैं और अन्धविश्वास में यह समझते हैं, कि इसके फलस्वरुप भगवान हमें स्वर्ग में निवास स्थान देंगे। किन्तु फिर भी यह गली ऐसे विरोधों में सिर उठाए जीए जा रही है। यही इसकी इबसे प्रमुख खुबी है। इस गली में कुछ चीजे हमारी समझ के बाहर भी जान पडती है, जैसे यहाँ के रितिरिवाज, रंग–ढंग, सोचने का तरीका सबका एक तरह का ही जान पडता है। इस गली से कई शहर की और पलायन कर गए अवतारा और तेजा युवक बहुत सारे खाने के व्यंजन होते हुए भी उनमें प्यार न होने की वजह से घास–फूस का स्वाद महसूस करते हैं। इस गली के नौजवान लोग अपनी आँखो में नये नये सपने लेकर जैसे अनेक इंजीनियर, डॉक्टर आदी बनने चले जाते हैं, किन्तु कुछ के सपने सच हो जाते हैं, तो कुछ ऐसे ही रहने को मजबूर हो जाते हैं। कुछ इसी तरह का वर्णन 'चन्द्रकान्ता जी' ने अपने उपन्यास *'ऐलान गली जिन्दा है'* में किया है।

'यहाँ वितस्ता बहती है' उपन्यास में 'चन्द्रकान्ता जी' ने एक ऐसे पात्र का चित्रण किया है, जो संवेदनशील है साथ ही साथ बुद्धिजीवी भी है। जो कश्मीर में सम्पन्न हिन्दु परिवार से

सम्बन्ध रखता है। यह हिन्दू समाज सहजता के साथ चलते-चलते जीवन को जी रहा है, इसी का वर्णन इसमें 'चन्द्रकान्ता जी' ने करने की कोशिश की है।

'यहाँ विस्तता बहती है' के पश्चात् 'चन्द्रकान्ता जी' का अगला उपन्यास *'अपने-अपने कोर्णाक'* प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में एक नारी के हित का वर्णन किया है, वह नारी पढी-लिखी है तथा आर्थिक दृष्टि से भी अपना खर्चा स्वयं चलाती है। अर्थात् हम उसे आर्थिक रुप से स्वावलम्बी भी कह सकते हैं। इस केन्द्रीय पात्र मुन्नी के रुप का चित्रण है। मुन्नी समझदार व पढी-लिखी होने के बाद भी अपने पारिवारिक मर्यादा के कारण शादी नही कर पाती हैं। हमारे समाज की आज भी कुछ पारिवारिक मर्यादाएं होती है। अत: मुन्नी पात्र ने भी अपने पारिवार की जिम्मेदारियाँ ले रखी है, वह अपनी जिम्मेदारियाँ बीच में तो नही छोड सकती। इसके साथ-साथ एक औरत को शादी पर लडके वालों को तिलक के नाम पर धन व सामान आदि देना पडता है, जिसे तिलकदहेज के नाम से जाना जाता है। अत: अगर मुन्नी को शादी करनी है, तो पहले दहेज एकत्रित करना पडेगा। किन्तु अपने परिवार की जरुरते पूरी करने के बाद धनराशि बचाने में मुन्नी असमर्थ है। अत: उसी वजह से लग.भग बत्तीस साल की उम्र होने के बावजूद मुन्नी एकाकीजीवन और अनिर्णय की मानसिकता लिए जीवन यापन कर रही हैं। वह कोणार्क की यात्रा करती हैं, तब उनके मन की गाँठे खुलती हैं। इसमें सिद्धार्थ उनका साथ देते हैं, उसके सुषुप्त मन को जगाने का काम करते हैं। तब कही जाकर मुन्नी को अपने औरत होने व अकेला होने का एहसास होता है। किन्तु अन्त में पारिवारिक विरुद्ध परिस्थितियों के कारण उसका यह सम्बन्ध भी खत्म हो जाता है। अन्त में मुन्नी डॉ. अनिरुद्ध नाम के युवक को अपना जीवन-साथी चुन लेती हैं अर्थात् विवाह बन्धन में बंध जाती हैं और अपनी जिन्दगी को जीवन जीने की सार्थकता प्रदान करती है।

अत: हम देखते हैं कि 'चन्द्रकान्ता जी' ने अपने समस्त उपन्यासों में पारिवारिक संवेदनाओं को सर्वप्रथम अत्यधिक महत्व दिया है। सभी उपन्यासों में *'ऐलान गली जिन्दा है'* सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों की गिनती में आता है। इसमें हमें अपने पुराने रीतिरिवाज व सांस्कृतिक मूल्यों को जिन्दा रखने के बारे में समझाया है। आज-कल यह आम बात है, कि गाँव से युवक लोग नयी नयी आशाएं व सपने लेकर शहर जाते हैं। किन्तु शहर उन्हें धक्के व बेरुखी के अलावा कुछ नही देता है। उसे दर-दर की ठोकर खाने पर मजबूर कर देता है। तब उन्हें अपने

घर, परिवार, समाज के प्यार की याद आती है जिसे वह शहर के लिए त्याग देता है। ऐसा ही कुछ बताने की कोशिश इनके उपन्यासों में की है।

२.७ श्री लाल शुक्ल

२.७.१ श्री लाल शुक्ल का परिचय

'श्री लाल शुक्ल' का जन्म बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में सन् १९२५ ई. को लखनऊ जिले के एक गाँव में हुआ। उन्होंने पारंपरिक व उच्चशिक्षा उत्तरप्रदेश के इलाहाबाद से ग्रहण की। इसके पश्चात् उत्तरप्रदेश की राज्य प्रशासनिक सेवा में कार्य किया और ततपश्चात् भारतीय प्रशासनिक सेवा में कार्य करते हुए सन् १९८३ में सेवानिवृत हो गए।

'श्री लाल शुक्ल' ने हिन्दी गद्य को व्यंग्य की वह धारा दी है, जो उनसे पहले किसी लेखक से अधिक मात्रा में सम्भव नही हुई थी। 'श्री लाल शुक्ल' ने व्यंग्य को करुणा के रंग में रंग कर चित्रण किया। 'श्री लाल शुक्ल' समकालीन कथा साहित्य में उद्धेश्यपूर्ण व्यंग के लिए प्रसिद्धि हासिल की है। उनका पहला उपन्यास *'सूनी घाटी का सूरज'* और पहला व्यंग संग्रह *'अंगध का पाँव'* प्रकाशित हुआ। स्वतंत्रता पश्चात् गाँवों की जीवनशैली परत्–दर–परत् सामने लाने वाला उपन्यास *'राग दरबारी'* के लिए सन् १९६९ में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। बाद में *'राग दरबारी'* उपन्यास पर (१९६८) एक दूरदर्शन धारावाहिक का भी निर्माण हुआ। इसके अतिरिक्त 'श्री लाल शुक्ल' को साहित्य भूषण सम्मान, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय का गोयल साहित्य पुरस्कार, लोहिया अतिविशिष्ट सम्मान, मध्यप्रदेश शासन का शरद जोशी सम्मान, मैथिलिशरण गुप्त सम्मान, व्यास सम्मान आदि से सम्मानित किया गया।

२.५.२ प्रमुख साहित्य / कृतियाँ

'श्री लाल शुक्ल जी' के प्रमुख कहानी संग्रह *'यह घर मेरा नहीं', 'सुरक्षा तथा अन्य कहानियाँ'*, तथा *'इस उम्र में'* शीर्षक पुस्तको में संकलित है। व्यंग्य निबन्ध *'अंगद का पाँव', 'यहाँ से वहाँ', 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ', 'उमराव नगर में कुछ दिन', 'कुछ जमीन पर कुछ हवा में', 'आओ बैंठ लें कुछ देर', 'अगली शताब्दीं का शहर', 'सहादत के पचास साल', 'खबरों की गुलामी'* में संग्रहीत है। *'श्री लाल शुक्ल जी'* की प्रकाशित पुस्तकों में *'सूनी घाटी का सूरज', 'अज्ञातवास', 'राग दरबारी', 'सीमाएँ टूटती है', 'मकान', 'आदमी का जहर', 'पहला पडाव'* आदि प्रमुख हैं।

'*श्री लाल शुक्ल*' के प्रथम उपन्यास *'सूनी घाटी का सूरज'* १९५७ ई. में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास लघु उपन्यास के रुप में जाना जाता है। इसमें एक प्रतिभाशाली उच्चवर्गीय निर्धन छात्र की कहानी कहीं गयी है। अर्थात् एक छात्र है, जो उच्चवर्ग का है, किन्तु वह धन-सम्पत्ति से रहित है, वह पढने में प्रतिभाशाली भी है। अत: वह प्रतिभाशाली छात्र कठोर परिश्रम करता है। पढाई करते वक्त उसे बहुत सी कठिनाईयाँ आती हैं, बहुत से संघर्षो को झेलता हुआ, वह अन्तत: गाँव के एक स्कूल में अध्यापक की नौकरी पाने में सर्मथ होता है। उसी गाँव में ताउम्र अध्यापक के रुप में रहने को बाध्य होता है। '*श्री लाल शुक्ल*' ने इस उपन्यास के माध्यम से यह बताने की कोशिश की है, कि उच्चवर्ग का होते हुए भी कठिन परिश्रमी बालक को किन-किन संघर्षो का सामना करना पडता है और अन्त में एक अध्यापक के रुप में जीने को बाध्य हो जाता है। इस उपन्यास की कहानी का वर्णन सपाट ढंग से किया गया है।

'अज्ञातवास' उपन्यास में एक ऐसे पात्र के बारे में चित्रण किया गया है, जो अपनी पत्नी के साथ मरने से पहले क्रूर व्यवहार करता था, हमेशा उसे ताना मारकर परेशान किया करता था। उसकी आत्मयातना की कहानी कहीं गयी है। इसके बाद अकेले जीवन बिताने पर अन्तत: पश्चाताप की कहानी है। अर्थात् एक व्यक्ति पात्र अपनी पत्नी को बहुत ही क्रूर तरीके से परेशान किया करता था, किन्तु जब वह भगवान को प्यारी हो गई, तो उसके विरह से दुखी होकर पश्चाताप में अपना जीवन व्यतीत करता है। अपनी सभी गलतियों को मन ही मन स्वीकार करता है। स्वयं को अपराध बोध ग्रसित जीवन जीने को बाध्य करता है।

'राग दरबारी' को हम अध्ययन करे तो लगता है, कि उपन्यासकार के रुप में '*श्री लाल शुक्ल*' को प्रतिष्ठित करने वाला उपन्यास *'राग दरबारी'* (१९६८) ही था। *'राग दरबारी'* एक ऐसा उपन्यास है, जो गाँव की कहानी को माध्यम बनाकर आधुनिक भारतीयों के जीवन की सहजता और निर्ममता का मूल्यांकन करता है। यह उपन्यास व्यंग्यात्मक उपन्यासों की श्रेणी में आता है। इस उपन्यास में शुरु से अन्त तक कई दृश्य व्यंग्य के साथ चित्रित किया गया है। *'राग दरबारी'* का सम्बन्ध एक बडे नगर से कुछ दूरी पर बसे हुए ग्रामीणों की जिन्दगी से है, वे ग्रामीण लोग जो इतने साले के विकास व प्रगति के नारों के बावजूद अपना जीवन घिसटता हुआ देख रहे हैं। यहीं बतलाना इनके जीवन का प्रमुख दस्तावेज है। *'राग दरबारी'* उत्तरप्रदेश के पूर्वाचँल के एक कस्बानुमा गाँव शिवपाल गंज की कहानी है। यह एक ऐसे गाँव की श्रेणी में आता है, जो आजादी-प्राप्ति के पश्चात् भी गरीबी हटाओ के नारो के साथ भी घिसटता जा रहा

है। 'श्री लाल शुक्ल जी' ने बडी ही मार्मिकता के साथ इसका चित्रण किया। आजादी मिलने के दो दशक बाद भी बिहार व उत्तरप्रदेश जैसे राज्य अविकसित ही रहें। पिछडेपन के साथ-साथ वहाँ के सांस्कृतिक जीवन में मूल्यों में भी गिरावट आयी हैं। अगर हम देखे तो आजादी के पहले 'प्रेमचन्द' के जमाने का कृषक भी गरीब व असहाय था। परन्तु उस ग्रामीण कृषक के चरित्र में सहजता, सरलता और धार्मिक भाव का उजागर था। किन्तु आजादी के काफी समय बाद वह ऐसा नहीं रह गया था। राजनीति की गन्दगी गाँवों में भी फैल गयी थी। 'श्री लाल शुक्ल' ने इन्हीं सब का चित्रण विस्तृत रुप से अपने उपन्यास *'राग दरबारी'* में किया है। उपन्यास में एक शिवपाल गंज नामक कस्बानुमा गाँव है। यहाँ पर कॉलेज, थाना, डाकघर, ग्रामसभा, सहयोग समिति आदि सभी मौजूद है। 'श्री लाल शुक्ल जी' का मानना है, कि आजादी के बाद नेताओं की अत्यधिक मात्रा में वृद्धि हुई है अर्थात् कुकुरमुत्ते की तरह नेताओं का विकास हुआ है। ये नेता अत्यन्त चालाक, स्वार्थी, कमीने व गाँवों के विकास के सबसे बडें शत्रु व सांस्कृतिक मूल्यों के भक्षक भी है। इन नेताओं ने अपने दबदबे से सारे गाँव के पूरे जीवन को जकडा हुआ है। इसमें एक पात्र वैद्य जी का बडा बेटा बद्री पहलवान और साथ ही साथ गुंडा, छोटा बेटा लखन आधुनिक योद्धा है और दोंनो ही अपने पिता की मजबूत दो बाजूएँ है। वैद्य जी उपर से एक सन्त महात्मा की तरह अपना व्यवहार लोंगो को दिखाते हैं, किन्तु अन्दर से खतरनाक शैतान का रुप है। वह शिवपालगंज के कॉलेज का मैनेजर है और इसीलिए बहुत से अधिकार व ताकतें उसकी मुठ्ठी में है। शिक्षकों की नियुक्ति से लेकर कॉलेज की आर्थिक अर्थव्यवस्था तक सब कुछ उसकी मुठ्ठी में है। दारोगा, स्थानी नेता, सरकारी कर्मचारीगण सभी उसके हाथों के खिलौने है। वैद्य जी के विरोध के सामने जनता को कोई विकल्प नही है। उत्तरप्रदेश के पूर्वाचँल और बिहार की इस स्थिति में आज भी कोई खास परिवर्तन नही हुआ है, आज भी वहाँ की स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है, बस इसी का वर्णन व्यंग्यात्मक तरीके से 'श्री लाल शुक्ल' ने किया है।

'मकान' उपन्यास सन् १९७६ ई. में प्रकाशित हुआ। *'मकान'* उपन्यास में 'श्री लाल शुक्ल जी' ने इतना व्यंग्य भर दिया है, कि उपन्यास में हर जगह व्यंग्य ही दिखाई पडता है। इसमें समकालीन समाज की विसंगतियों पर सटीक और करारा व्यंग्य किया गया है। हमारा समाज अनेक अन्धविश्वासों, मान्यताओं व परम्पराओं जैसी समस्याओं से आज भी लड रहा है, इसी का चित्रण मकान में देखने को मिलता है। इसमें दफ्तर में काम करने वाले एक संगीतज्ञ बाबू का मकान के लिए अपने ऊपर के अफसर की खुशामद करना तथा बाबू अफसर को खुश

करने हेतू तरह-तरह के प्रयत्न व तरीके अपनाता है। संगीतज्ञ का अन्य औरतों से प्रेम का सम्बन्ध भी होता है। उपन्यासकार के हर समय व्यंग्यात्मक शब्दों के कारण केन्द्रीय कथन धुंधला सा पड गया है।

'पहला पडाव' १९८७ ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में भी *'श्री लाल शुक्ल जी'* ने मकान की ही तरह व्यंग्य की अधिकता का चित्रण किया है। अत: इस उपन्यास में मार्मिक प्रसंग ना के बराबर है और जो व्यंग्य है, वह भी करुणा की अनुभूति से अलग जान पडते हैं। इस उपन्यास में कथा विषय मकान बनाने में काम आने वाले लोगों पर करारा व्यंग्य किया गया है। जिसमें मकान बनाने वाले प्रबन्धक, ठेकेदार, इंजीनियर, सेठ और मुंशी सभी मिलकर मजदूरों का शोषण करते हैं और सभी भ्रष्टाचार भरा जीवन जीते हैं। *'पहला पडाव'* उपन्यास में भी आज की समस्याओं पर कडा प्रहार किया गया है। उच्चपद के लोग हमेशा से ही मजदूरों व निम्न वर्ग का शोषण करता आया है, इसी का वर्णन 'पहला पडाव' में किया गया है।

'श्री लाल शुक्ल जी' ने सन् १९७३ में *'सीमाएँ टूटती है'* नामक उपन्यास की रचना की। इस उपन्यास में अपराध, प्यार व रोमांस की मिलीजुली कहानी है। *'श्री लाल शुक्ल जी'* का यह उपन्यास इस अवधारणा का खंडन करता है, कि अपराध से भरी कथाएँ साहित्यिक नही हो सकती। जी हाँ, उनके अनुसार साहित्य में अनेक अपराध-बोध से भरी हुई कहानियाँ हो सकती है। इस उपन्यास में एक पात्र युगदिस है, जिसको हत्या के कारण उम्रकैद हो जाती हैं। इस उपन्यास में बहुरंगी संसार की रचना हुई है। इसमें बताया गया है, कि वास्तविक यहाँ एक उलझाव है, यह संसार सुलझा हुआ नही हैं, बल्कि एक दूसरे में उलझा हुआ है। इस उलझे हुए संसार में धर्म, प्रेम तथा अपराध से सभी जकडें हुए हैं। इस उपन्यास में *'श्री लाल शुक्ल जी'* ने यह बताने कि कोशिश की है, कि सबसे बडा वह अपराध हत्या का नहीं है, जो हो चुका है, बल्कि उसके पश्चात् मानवीय सम्बन्धों की हत्या सबसे बडा अपराध है। इन्हीं सम्बन्धों की हत्या व बचाव की कहानी *'सीमाएँ टूटती है'* में देखने को मिलती है। यह अपराध भरा उपन्यास पढनें वाले को सरल अवरोह के साथ मानवीय गहराईयों में उतार देता है।

'आदमी का जहर' उपन्यास में भी *'श्री लाल शुक्ल ने'* एक अपराध बोध कहानी का ही चित्रण किया है, बस फर्क सिर्फ इतना है, कि इसका अपराध रहस्यपूर्ण है। इसकी शुरुआत एक ऐसे पति से होती है, जो अपनी पत्नी के रुपवती होने पर उसे ईर्ष्यावश जलन करता है। जहाँ भी

उसकी पत्नी जाती है, वह छिपकर अपनी पत्नी का पीछा करता है। एक दिन तो हद ही हो जाती है, वह एक होटल के कमरें में जाकर उसकी पत्नी को गोली मार देता है। इसके बाद वह साधारण सा दिखने वाला हत्याकांड असाधारण बन जाता है। अत: अब पति के जीवन में हत्या जैसा अपराध व दूसरी तरफ देखे तो, भयंकर अपराधों का अंधेरा नजर आता है। इस सभी का तनाव उपन्यास में हमेशा बना रहता है, क्योंकि यह एक रहस्यमय उपन्यास है।

इसके पश्चात् 'श्री लाल शुक्ल जी' का *'बिश्रामपुर का सन्त'* नामक उपन्यास भी सामने आया। इसमें उन राजनीतिक लोंगो के पाखंड का अंकन किया गया है, जो बडी ही सावधानी से कदम बढाते हुए कुर्सियाँ हासिल करते हैं और किसी कारण अगर यह कुर्सी छीन जाये, तो सन्त की तरह भूमिका अपना लेते हैं। नेतागण पर्दे के पीछे चाहे अनचाहे सभी तरीके अपनाकर पद प्राप्त करने के लिए जोड-तोड करने लगते हैं। ऊपर से बडे ही सरल व सफेद-पोश नजर आते हैं, बस ऐसे ही नेताओं का वर्णन मात्र उपन्यासकार का प्रमुख उद्देश्य है।

२.८ मैत्रेयी पुष्पा

२.८.१ मैत्रेयी पुष्पा का परिचय

'मैत्रेयी पुष्पा' का जन्म ३० नवंम्बर सन् १९५५ को अलीगढ जिले के सिर्कुरा में हुआ। उनका प्रारम्भिक जीवन झांसी जिले के खिल्ली गाँव में व्यतीत हुआ। 'मैत्रेयी पुष्पा' ने बुन्देलखंड कॉलेज झांसी से एम.ए. (हिन्दी साहित्य) में किया। 'मैत्रेयी पुष्पा' नब्बे के दशक् में आगे निकल कर आयी और साहित्यकारों की दौड में एक मुकाम हासिल किया। 'मैत्रेयी पुष्पा जी' को अपने स्वतंत्र लेखन की वजह से विशेष रुप से पहचाना जाता है। उन्होंने हमेशा अपना लेखन स्वतंत्र रखा, जो उन्हें लगा वही लिख दिया। 'मैत्रेयी पुष्पा' में मानवीय भावों की सघन अन्तरंगता और सम्बन्धों की जटिलता को चित्रित करने की अनोखी क्षमता मौजूद है। कथा लेखिका 'मैत्रेयी पुष्पा' के अधिकतर उपन्यास को मील का पत्थर माना जा सकता है।'मैत्रेयी पुष्पा जी' के बारे में अनेक साहित्यकारों ने कुछ इस प्रकार से बात कही हैं। 'ज्ञानरंजन' ने कहा कि *'जिस लोक-जीवन से हमारी रचनात्मक धारा काफी पहले विमुख हो चुकी थी उसकी अनेक परतें मैत्रेयी पुष्पा जी ने खोल दी है। मैत्रेयी पुष्पा को उनकी मामूली लेकिन जबरदस्त ग्रन्थों के कारण याद किया जाएगा।'*

'राजेन्द्र यादव' द्वारा कहा गया कि *'चाक सामन्ती समाज के भीतर व्याप्त हिंसा और स्वार्थों के टकराहट की प्रमाणिक कहानी है। इस कहानी का ताना-बाना समाज से बना है। मैत्रेयी इन दोंनो को ही एक कथाकार की निगाह से पात्रों के आचार विचार और सोच के रुप में प्रभावशाली ढंग से पकडती है। चाक में बिना बडबोलेपन के उन्होंने गाँव की स्त्री की चेतना का विकास किया है , यह उपन्यास कला पर उनकी पकड को रेखांकित करता है।'*

'मैत्रेयी पुष्पा' को सार्क लिटरेरी अवार्ड, द हंगर प्रोजेक्ट (पंचायती राज)का सरोजिनी नायडु पुरस्कार एवं अन्य कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

२.८.२ प्रमुख साहित्य / कृतियाँ

'मैत्रेयी पुष्पा जी' की प्रकाशित कहानी संग्रह *'चिन्हार', 'गोमा देखती है', 'ललमनियाँ', 'फैसला'* आदि है। इनकी कहानी *'फैसला'* पर एक टेलीफिल्म का भी निर्माण हुआ, जिसका नाम *'वसुमती की चिट्ठी'* है।

इनकी प्रमुख आत्मकथा *'कस्तूरी मुंडल बसै'* है। इनके प्रमुख उपन्यासों में *'बेतवा बहती रही', 'इदन्नमम्', 'चाक', 'झूलानट', 'अल्मा कबूतरी', 'आंगनपाखी विजन'* आदि है।

'मैत्रेयी पुष्पा जी' ने अपने उपन्यास लेखन का प्रारंम्भ *'स्मृति दंश'* (१९९०) नामक उपन्यास से किया था। इसी के कुछ समय पश्चात् उनका दूसरा लघु उपन्यास *'बेतवा बहती रही'* सन १९९३ में प्रकाशित हुआ। *'स्मृतिदंश'* और *'बेतवा बहती रही'* दोंनो ही उपन्यास कुछ इस प्रकार के है, कि भावुक पाठक की आँखों में आँसू ला देने वाले हैं। दोंनो ही उपन्यासों में परम्परागत पुरुष समाज द्वारा एक औरत पर होने वाले अत्याचार का अंकन किया गया है।

'इदन्नमम्' ने 'मैत्रेयी पुष्पा जी' को एक उपन्यासकार के रुप में प्रतिष्ठा दी। *'इदन्नमम्'* उनका तीसरा उपन्यास था, जो १९९४ ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने बुन्देलखंडी जीवन पर प्रकाश डालने की कोशिश की है। बुन्देलखंड के पहाडी अँचलों का अंकन अपने उपन्यास में किया है। *'इदन्नमम्'* उपन्यास की स्त्री पात्र मन्दाकिनी को एक जूझारु युवती के रुप में खडा किया गया है, जो अपने परिवार के रुढिवादी व अन्धविश्वास के परम्परागत बन्धनों को तोड देती है, साथ ही सामाजिक बन्धनों की परवाह नही करती हैं। वह अत्याचार के खिलाफ सीना तानकर खडी हो जाती है और आज के नेताओं और ठेकेदारों के खिलाफ एक जंग छेड देती है। मन्दाकिनी की माँ प्रेमा भी नारी की व्यथा से जूझ रही हैं, साथ ही उनकी मासी कुसुमा भी स्त्री दुखों में जी रही है, किन्तु मन्दाकिनी ने इतना साहस दिखाया और शोषण के खिलाफ स्वयं की परवाह न करते हुए सबको उनका हक दिलाने के लिए खडी रही। 'मैत्रेयी जी' मन्दाकिनी पात्र का अंकन कर उसके सहारे उन औरतों को नवजागरण का सन्देश देना चाहती है, जो पुरुष समाज द्वारा शोषित की जा रही है।

'चाक' उपन्यास का प्रकाशन सन् १९९७ ई. में किया गया। 'मैत्रेयी जी' का यह उपन्यास उनके लिए मील का पत्थर साबित हुआ। *'चाक'* उपन्यास के बारे में मैनेजर पाण्डेय

जी का कुछ इस तरह कहना है, कि स्त्री की कथा द्रवित ही नहीं, उसकी शैली और वाक्य रचना भी पुरुष से भिन्न होती है। इसका प्रमाण *'चाक'* की कथा रचना और कथाभाषा में दिखाई देता है। *'चाक'* की कथा एक स्तर पर गद्य में चलती है और इसके साथ दूसरे स्तर पर लोकगीतों में। *'चाक'* उपन्यास की केन्द्रीय पात्र सारंग न केवल नारियों के प्रति पुरुषों के अत्याचार को चुनौती देती है, किन्तु परम्परागत नारी संहिता की सभी मान्यताओं को नकारती हुई अपने प्रेमी से देह संम्बन्ध स्थापित करती है। यह करने के बाद भी सारंग कुछ ऐसा करना चाहती थी, जिससे की स्त्रियों को कुछ आजादी मिल सकें। अत: सारंग ने पुरुष सत्ता को चुनौती देने हेतु ग्राम पंचायत के चुनाव में प्रधान पद के लिए परचा भी भर देती है। उसकी इस हरकत से पुरुष समाज दंग रह जाता है। *'चाक'* उपन्यास में एक जगह फतेहसिंह प्रधानजी को बिगडते शिक्षा विभाग के बारे में कह रहे हैं कि:-

> **''मैने एक जगह पढा था कि अफसर लोग समझते हैं, सरकारी कुर्सियों के नीचे असर्फियाँ दबी रहती है। खुदाई करते जाओ। मालामाल हा जाओंगे। शिक्षा विभाग में ही क्या, हर विभाग में ऐसा हो रहा है। प्रौढशिक्षा, नारीशिक्षा, बालशिक्षा, केंप सब बकवासी ढोंग है...तमाशे। इन तमाशो का भोपू बजना चालू होता है तो बजता ही रहता है। और जब वादे पूरे होने को आते हैं तो सम्बंधित लोग अपनी-अपनी जेबो का मुँह खोल देते हैं और भर-भरकर ढो ले जाते हैं।''** *(चाक, पृ. १७८)*

अत: इसमें यह कहाँ जा रहा है, कि आजकल की हमारी शिक्षा प्रणाली भी पहले जैसी नहीं रही है। सब ऐसा सोचते हैं, कि उनकी सरकारी कुर्सियों के नीचे ढेंरो खजाने भरें पडे हैं। अत: जितना चाहो उतना लूट लो, फिर चाहे बहाना केंप या फिर कोई भी हो। श्रीधर जी कुछ इस तरह से शिक्षा प्रणाली पर व्यंग्य करते हुए कह रहे है कि:-

> **''प्रणाम ऐसे अफसर को प्रणाम। जिसने इन मासूमों की छोटी -छोटी चीजों में से कमीशन खाया हो और पूरी-पूरी रकम हजम कर ली हो। यह इनकी बढती विकसित होती उम्र के साथ उसी तरह की बेईमानी है, जैसे कोई कच्चे पौधों की धूप छीन ली जाए, कोंपलों की हवा चुरा ले। गीली मिट्टी के बर्तनों को धूप दिखाने के नाम पर आग में धर दे।प्रधानजी, इन्हीं सत्पुरुषो की कृपा से स्कूलों में**

अध्यापक नहीं; दलाल तेनात किए जाते हैं। गाँव में मुखिया न्यायकारी प्रधान नही; गुंडों की भूमिका निभाते हैं। पाँच हजार का सामान आना था स्कुल में कहाँ आया? रुपए कहाँ गए? ऊपर से इन मासूमों को सजा?" *(चाक, पृ. २३१)*

इस में स्पष्ट रुप से अध्यापकों के खिलाफ व्यंग्य किया गया है, जो हर चीज में हमेशा कमीशन लेने की कोशिश में रहते हैं। इन मासूमों को इस प्रकार सजा दी जा रही हैं, जैसे कि नवउत्पन्न पौधों को उनकी जान धूप को छीन लिया जाए। यहाँ स्कूलों में पढाने के लिए अध्यापक नही, बल्कि दलाल बिठा दिए गए है। क्योंकि अध्यापक का काम तो निस्वार्थ बच्चों को पढाने का होता है, कमीशन खाना नही होता और अगर वे ऐसा करते हो तो उन्हें दलाल ही कहा जाएगा।

"यहाँ पढा लिखा और समझदार होकर रहना ही सबसे बडी खता है। तुम समझ रहे हो न कि मैंने किस तरह इनकी धमकी और दहशत के सामने घुटने टेक दिए है? कहते हुए रंजीत ने महुआ सा मुँह बनाया और आवाज रुआँसी सी निकाली।

'दलवीर ने भाई के हाथ थाम लिए, घबराने की जरुरत नही। हाँ, अब यहाँ आदमी की सुरक्षा नही है खतरा ज्यादा बढ गया है। गुंडागर्दी? जो जितना बदमाश हो वह उतना ही पूजता है। लठ्ठ के दम पर लोंग भैंस हाँके ले जा रहे हैं। ऐसा न होता तो नम्बरदार भीगी बिल्ली की तरह दुबके रहते? भवानीदास साधजी के बेटें की टकील कर रहे होते? सांड के आगे बदिया की भी लाचारी। भवानी दास को भी पता है कि जाटौं से उधारी भी वसूलियानी करनी है तो डोरियों को ताकत का सहारा लेना पडेगा।" *(चाक, पृ. २३५)*

इस अवतरण में रंजीत और दलवीर दोंनो भाई आपस में बातचीत कर रहे हैं, रंजीत कह रहे हैं, कि इस समाज में पढा-लिखा होना ही एक तरह से हमारी सबसे बडी गलती बन गई है, अर्थात् पढाई ही हमारी दुश्मन बन गई है। रंजीत गुंडो के सामने नत्मस्तक हो गए, क्योंकि उनकी शक्तियाँ अधिक मात्रा में हो रही है। अतः दलवीर अपने भाई रंजीत को धीरज बंधाते हुए कह रहे है, कि भैया तुम्हें डरने या फिर घबराने की कोई जरुरत नहीं है। अब इस समाज में डंडे व गुंडा-गर्दी का खेल हो गया है। जो जितना अधिक बदमाश होता है, वह वहाँ की जनता द्वारा पूजा जाता है। नम्बरदार साहेब भी भवानीदास के बेटों से डरते हुए उनके आगे-पीछे घूमते हुए

नजर आते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि *'चाक'* उपन्यास में इस सामाजिक व्यवस्था पर करारा व्यंग्य कसा है। इसकी पात्र सारंग जो ज्यादा पढी–लिखी तो नही है, पर उसमें गजब की मजबूती है और उसकी इस मजबूती का साथ श्रीधर प्रजापति देते हैं। श्रीधर अपने आदर्श और प्रेम के चाक पर सारंग को एक नया दृढता से भरा स्वरुप प्रदान करते हैं। सारंग में अन्याय से लडने व स्त्री अधिकारों के लिए जान की बलि देने की हिम्मत और दृढता है। इसमें साथ ही उसमें गंम्भीर संवेदनशीलता, विवेक और समझने की क्षमता भी है। श्रीधर इस कच्चे उपादान को सही रुप देने के लिए, जैसे सच्ची लगन व मेहनत से काम करता है। इसमें 'मैत्रेयी पुष्पा जी' ने कुछ तीन प्रकार के विषयों को प्रमुखता दी है। प्रथम नारी का अपने पति के साथ मिली दूसरी औरत से प्रेम का अधिकार, दूसरा नब्बे दशक के बुन्देलखंड के पिछडें गाँवों की सच्चाई व तीसरा अपने अधिकारों के प्रति सजगता।

'झूलानट' उपन्यास का प्रकाशन सन १९९९ में 'मैत्रेयी जी' द्वारा किया गया। इस उपन्यास का कथ्य विषय भी जाट समाज के अलग अलग सम्बन्धों की कहानी एक खास अन्दाज में 'मैत्रेयी पुष्पा जी' एक ऐसे जाट युवक का चित्रण किया गया है, जो भाभी के साथ सम्बन्धो की चक्की में पिसा जा रहा है। सास बहू दोनो के सम्बन्धों में कभी प्यार तो कभी टकरावट दोनो रंग इस उपन्यास में देखने को मिल जाते है। इस परिवार में शीलो नामक युवती जो पारिवारिक परम्परागत मूल्यों को तोडने व उनको चुनौती देती है। शीलो स्त्री–संहिता को भी नजर देती है तथा सभी से विद्रोह कर सामने खडी हो जाती है। शीलो पात्र का चरित्र कुछ कुछ 'कृष्णा सोबती' की मित्रो जैसा जान पडता है। *'झुलानट'* उपन्यास की शीलों पात्र में नारंग की ही तरह चमत्कारिक सोच विचार की शक्तियाँ है तथा स्वयं की की किस्मत स्वयं लिखने का संकल्प भी है। वह संम्पूर्ण समाज के सामने अकेली खडी हो जाती है, उसमें संम्पूर्ण समाज की पुरानी मान्यताओं के साथ अकेले ही टक्कर लेनेकी क्षमता है। वह इस समाज में स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है, किन्तु अपनी सोच के अनुसार बनाए गये नवीन मूल्यों के साथ। किन्तु समाज उन्हें ऐसा नही करने देना चाहता, वह जानता है, कि आज इसको खुली छुट दी तो कल अनेकों शीलो सामने खडी हो जाएगी और फिर सभी परंम्पराए उनके सामने धराशायी हो जायेगी। समाज अपनी सभी ताकतें लगाकर उसे रोकना चाहते है, किन्तु शीलो की द्रूढता इतनी पक्की है, कि वह अकेली ही अपने मित्र श्रीधर के साथ मिलकर उनका डटकर सामना करती है। इन्ही सब का विस्तारपुर्वक वर्णन 'मैत्रेयी पुष्पा जी' ने किया है ।

'मैत्रेयी पुष्पा जी' का *'अल्मा कबूतरी'* उपन्यास सन् २००० ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में पराजयी हुए व्यक्तियों की कहानी है, इसीलिए इसको पढते हुए पाठक को गहरी पीडा की अनुभूति होती है। इसमें एक ऐसे समाज का चित्रण किया है, जो सभ्य कहा जाने वाला एक असभ्य और बर्बर समाज का चित्रण है। अत: अल्मा की कहानी इन्ही सब स्थितियों के प्रति विराध की कहानी है। जिसमे एक नारी इन सबका विरोध करती है। इसकी पात्र अल्मा अपने परिवेश से संघर्ष करते हुए सत्ता की कुर्सी पर पहुचने में समर्थ होती है। 'मैत्रेयी जी' ने अल्मा के द्रारा इस उपन्यास में सभी नारियों को यह सन्देश दिया है, कि चाहे कितने भी अवरोध रास्ते में खडे हो, लेकिन स्त्री अगर एक बार किसी लक्ष्य को मन में ठान लेती है, तो उसे पाकर ही दम लेती है। अल्मा ने भी आखिर सत्ता की कुर्सी को अनेक अडचनो व समस्याओं के बावजूद प्राप्त कर ही लिया। इसमें बुन्देलखंड में रहने वाली कबूतरा जाति के जीवन को उपन्यास का विषयवस्तु बनाया गया है। ये कबूतरा जाति के लोग स्वयं की वंश परम्परा को रानी पद्मिनी और झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई की अंगरक्षिका झलमारी से जोडकर मानते है। कबूतरा जाति का अपमान और उनकी विवशता व दुख भरे जीवन को उपन्यासकार ने गडी ही मार्मिकता से चित्रण किया है। कबूतरा जाति के लोगों का समाज से काफी लडाई-झगडा व टकराव होता है। भूरी, उसके बेटे रामसिंह व उनकी बेटी अल्मा की कहनी इसी टकराहत की कहानी है। जिसमें संधर्ष कर अपना सब कुछ दांव पर लगा देते है, कबूतरा जाति के लोग। वह आज भी कबूतरा बनकर जीवन जीने को अभिशप्त है ।

२.९ डॉ सूर्यदीन यादव

२.९.१ डॉ. सूर्यदीन यादव का परिचय

'डॉ. सूर्यदीन यादव जी' का जन्म १५ जुलाई सन १९५२ को उत्तरप्रदेश के जिला सुलतानपुरा के ढादा नामक जगह पर हुआ। उनकी प्रारंम्भिक शिक्षा सुलतानपुर में ही पूर्ण हुई। 'सूर्यदीन जी' ने हिन्दी विषय में एम.ए. किया। एम.ए. करने के पश्चात बी.एड., पी.एच.डी. की उपाधि ग्रहण की।

'सूर्यदीन यादव जी' को अपने उपन्यास *'माँ का आँचल'* के लिए हिन्दी साहित्य अकादमी पुरस्कार (१९९३), गुजरात द्वारा प्राप्त हुआ। जैमिनी सात्यि अकादमी द्वारा आचार्य की मानद पदवी से उन्हें सन् १९९७ को सम्मानित किया गया। हिन्दी साहित्य परिषद द्वारा *'दुसरी आँख'* कविता एवं *'नमी का पत्र'* आदि पुरस्कृत किए गए ।

२.९.२ प्रमुख साहित्य / कृतियाँ

'सूर्यदीन यादव जी' के प्रमुख काव्य संग्रह *'हिन्दवाहिनी' (१९९५), 'फागुन बीते जा रहे' (१९९३), 'दुसरी आँख' (१९९५), 'लगे मेरा गाँव' (२००१),* इनके प्रमुख कहानी संग्रह *'चित्रित नवीन महाकहानियाँ' (१९६९), 'पहली यात्रा' (१९९१), 'वह रात' (१९९८),* प्रमुख समीक्षा *'कथाकार रामदरश मिश्र' (१९८७), 'सुदर्शन मजीठिया का औपचारिक शिल्प' (१९९९), 'रामदरश मिश्र का काव्य अनुभव – एक ऊर्जा'* (२००३), प्रमुख निबन्ध में *'प्रारंम्भिक रचना और प्रेरक व्यक्तित्व'* (२०००) तथा प्रमुख उपन्यास 'दुसरा आँचल' (१९९१), 'माँ का आँचल' (१९९२), 'ममता' (२००२), 'अंधेरा जहाँ उजाला' (२००३), 'चौराहे के चेहरे' (२००३) आदि है ।

'सूर्यदीन यादव जी' बहुमुखी प्रतिभा के कवि, कथाकार, उपन्यासकार, समीक्षक तथा आँचलिक परिवेश के ताने-बाने को हू-ब-हू अंकन करने में सफलता प्राप्त की है । *'अंधेरा जहाँ उजाला'* उपन्यास में हम माटी के हर कण की सुगंन्ध महसूस कर सकते है। इस उपन्यास को हम असल जिन्दगी का उपन्यास कह सकते है, यह उपन्यास स्वयं उपन्यासकार का भोगा हुआ सच्चाई का प्रमाण है। जिसमें ग्रामीण जीवन परिवेश के हर जर्रे-जर्रे और तह-दर-तक की

पहचान है। हर जगह हम दुख के साथ भी हमेशा एक मीठे से सुख का सहलाव भी महसूस करते है। बस इसी का चित्रण इसमें देखने को मिलता है। अंधेरा जन्म (दुख) और उजाला जीवन (सुख) का प्रतीक भी माना जा सकता है। इस उपन्यास में समस्याएं, फरेब, जाल-साजी, नफरत और बेईमानी की अग्नि के बीच में संघर्ष करता हुआ मनई पात्र है, जो किसी के अंधकार में लीन रास्ते की रोशनी बन सकता है। यहां इस उपन्यास का साधारण सा पात्र निकवा भी स्वस्थ्य, सुंदर और नीरोगी समाज हो, की अपेक्षा सभी से रखता है। माटी के प्रत्येक कण की भी यह जवाबदारी होती है, कि वह अपने अखंण्डित तेज से गाँव व समाज और राष्ट्र को हमेशा मजबूती प्रदान करें, उसे दृढ बनाये रखे। अत: उसी मजबुती से नये अंकुर फूटते है। जमीनी एकता से ही जमीन सुरक्षित रहती है ।

> **"भाईयों, प्राकृतिक प्रकोप का कोई इलाज या उपाय नहीं होता है। उसे मनुष्य और हर प्राणियों को सहन करना पडता है। लेकीन यह कुहरा-अंधेरा है, यह प्राकृतिक नहीं है अभी दो घण्टें में छंट जायेगा और जुझते-कांपते लोग छाम-घमौनी लेने लगेंगे। यह उठता हुआ धुआँ भी नहीं है, जो थोडी देर गूंज कर आँखो को भिगोकर आसमान में उड जायेगा। ये सूरज पर छाये हुए बादल भी नहीं है कि पवन डोलने पर कट-छंट जायेंगे और सूरज फिर से चमकने लगेगा। यह रात का अंधेरा भी नहीं है जो सुबह होने पर दुबक जायेगा। यह तो कृत्रिम काला अंधेरा है जो मनुष्य ने गाँव, समाज देश में फैला रखा है, यह अंधेरा हमेशा गाँव समाज और बाग-सिवान पर छाया रहेगा। मैं जब से समझता हूँ तब से इस कुहरे जैसे अंधेरे को देख रहा हूँ। प्रकृति के क्षणिक प्रभाव बडे दुखदायी लगते हैं। पर युग-युगान्तर से मनुष्य पर ढाये जाने वाले सितम बडे ही कष्टदायी लगते हैं।"** *(अंधेरा जहाँ उजाला, पृ. ११३)*

रामजीत के कहने का यह मतलब है, कि हे मनुष्यों तुम अभी से समझ जाओं और इस तरह की गलतियाँ मत करो, जिससे दिन की रोशनी में भी अंधेरा छा जायें। उनका कहना है, कि सृष्टि कोई प्रकोप करती है, तो हम कुछ नही कर पाते और वह हमें सहन ही करना होता है। किन्तु जो अंधेरा अब है, वह प्राकृतिक नहीं है, यह हमारे द्वारा बनाया गया तम है। इस तम रुपी अंधेरे ने हमारे समस्त देशवासियों को अपनी चपेट में ले रखा है। यह बादल भी नहीं जो तेज हवा के झोंको से इधर-उधर हो जायें। अर्थात् कुछ पल का दुख तो फिर भी सहन कर सकते हैं,

किन्तु युगों से मनुष्यों पर किये जा रहे सितम बडे ही दुख प्रदान करने वाले बन जाते हैं। अत: हमें अगर इस तम से बचना है, तो स्वयं को बदलना होगा, किसी भी मनुष्य को अनाहक परेशान करना त्यागना होगा। इधर–उधर जहाँ कहीं भी अनिष्ट की आशंका हो, उसे डटकर रोकना होगा। समाज में हो रहे भ्रष्टाचार को रोकना होगा तभी हम अंधेरा मिटा सकते हैं। इस उपन्यास में प्रधान जैसे लोंगो द्वारा की जा रही गन्दी राजनीति को भी बताया गया है। रामजीत इस राजनीति को लेकर गुस्से से आगबबूला होकर कुछ इस तरह कह उठें:-

> **"इस प्रधान को कांग्रेस के जीतने–हारने से कोई वास्ता नही था। इसने लोंगो को अंधेरे में रखा था। कौन किस दल का है? यह जानना मुश्किल है। कुछ भी हो इन नये मुखौटें दलबदलुओं की चालें पर पानी फिर गया है। मुहँ की कालिख लगी है। किन्तु लगता है ये लोग सरकार को टिकने नही देंगे। ये लोग तरह–तरह के दंगे–फसाद करवाकर सरकार को बदनाम करना चाहते हैं। अपनी छान–छप्पर फूँककर सुकरु जैसे लोग निर्दोष गरीबों को जेल भिजवाते हैं। उनको बल्की कई बार सुना है कि रामजीत को किसी भी लपेंट में ले लो। पर मैं इन अपराधियों के जाल में नहीं फँसने वाला। ये डाल–डाल हम पात–पात। ये जंगलों के दुश्मन ,पेडों पर आरी चलवा सकते हैं, पर गगन में उडते पंछियों को जाल में नहीं फँसा पायेंगे। जब से गाँव में स्कूल खोला तभी से उनकी भौरें तन गयी है। स्कूल कुछ लोंगो की आँखों में मिर्च सा गडता है।"** *(अंधेरा जहाँ उजाला, पृ. ६६)*

रामजीत ने प्रधान जैसे लोगों के बारे में सच कहा है। रामजीत की इस सच्ची बात को सुनकर सभी लोग खुश हो गये। रामजीत ने दलबदलुओं पर करारा व्यंग्य किया है। प्रधान भी दलबदलु नेता है। उसकों पार्टी से कोई लेना देना नहीं है, इनके बार–बार दल बदलने की प्रक्रिया से यह पहचानना भी मुश्किल हो गया, कि कौन किस दल का है। किन्तु अभी जनता को सब समझ में आने लग गया और दलबदलुओं के चेहरे पर कालिक पुत गई। हार का मजा चखने के बाद ये विचलित होकर हम सभी पर अपना गुस्सा दिखा रहे हैं। ये लोग पैसे वाले तो होते ही हैं, इसीलिए तरह–तरह के दंगे करवाकर उन पर अपनी रोटियाँ सेकते हैं। ये इस सरकार को बदनाम करना चाहते हैं, फिर चाहे रास्ता गलत ही क्यों न अपनाना पडें। इस बदनामी में बेचारी साधारण जनता भी पीस कर रह जाती है। सुकरु जैसे लोग अनेक गरीबों व बिना दोष के लोगों को जेल भिजवा देते हैं। कई बार उन्होंने रामजीत को भी लपेंट में लेना चाहा है, किन्तु रामजीत हमेशा

चोकन्ने ही रहें। इस गाँव में जब से स्कूल खोला गया है, तभी से कुछ लोंगो की भौरें तन गई है अर्थात् उन्हें यह काम पसन्द नही आया, वे नहीं चाहते कि जनता को शिक्षा रुपी ज्ञान प्राप्त हो, अगर ऐसा हुआ तो प्रत्येक व्यक्ति अपना भला-बुरा अच्छे से समझ जायेगा। रामजीत कह रहे हैं, कि ये पेडों को कटवा सकते है, किन्तु आकाश में उडते पक्षियों को नहीं मार सकते। अर्थात् ये लोगों को अपनी चाल में फंसा सकते हैं, उन पर अत्याचार कर सकते हैं, किन्तु उनके मन में उठ रहे विचारों को नही बदल सकते हैं। अत: हम कह सकते हैं, कि रोशनी की एक किरण तम को चीरकर नया मार्ग भी बना सकती हैं और सबको जगमगा सकती हैं। बस यहीं इस उपन्यास का उद्देश्य है। अभावों में जी रहे अशिक्षा व ज्ञानहीन गरीब, बेबस लोगों को अपने तन बदन और अमूल्य जीवन, यहाँ तक की अपने अंगों के प्रति भी पूरा ज्ञान नहीं है, वे इस छल-कपट रुपी अंधेरे में छुपकर शिकार करने वाले उल्लुओं व बिल्लियों को कैसे जान-पहचान पायेंगे।

२.१० प्रभा खेतान

२.१०.१ प्रभा खेतान का परिचय

'प्रभा खेतान जी' का जन्म नवम्बर सन् १९४२ ई. में हुआ। वह एक प्रतिष्ठित उपन्यासकार तथा अस्तित्ववादी चिन्तक है। उन्होंने दर्शनशास्त्र में एम.ए. किया, तथा एम.ए. करने के पश्चात् ज्यां पॉल सात्र–अस्तित्ववाद विषय लेकर पी.एच.डी. की उपाधी ग्रहण की।

'प्रभा जी' ने स्त्री विषयक कार्यों में हमेंशा सक्रिय रुप से भागीदारी रखी है। रेडक्रास की कल्याण शाखा की 'प्रभा जी' भूतर्पूव चेयरपर्सन भी थी। इसके पश्चात् 'प्रभा जी' टी.एन. शेषन के साथ देशभक्त ट्रस्ट में भी शामिल थी। उनके हृद्य में शुरु से ही नारी के प्रति अच्छी भावनाएँ रहती है।

'प्रभा खेतान' अपने विशेष लेखनीय साहस के साथ एक औरत के बाहरी तरफ से ही नहीं, बल्कि उसके साथ आन्तरिक, निजी व गोपनीय रहनें वाली परतों को भी अपनी रचनाओं में लेखनी का विषय बनाया है। नारी के अन्तःमन में चलने वाली सभी प्रतिक्रियाओं पर 'प्रभा जी' ने अपने उपन्यासों में लेखनी चलाई है। उनका यह कार्य बडा ही साहसिक कार्य है। उनकी पुरानी नारी स्वयं अपने ही हाथों से अपना मस्तक काटने वाली और फीनिक्स की ही तरह बार बार अपनी ही अग्नि से एक नये रुप को जन्म देने वाली औरत होती है।

'प्रभा जी' को इन्दिरा गाँधी सॉलिडियरिटी अवार्ड, इंडिया इंटरनेशनल सोसायटी फोर यूनिटी द्वारा रत्न शिरोमणि पुरस्कार, महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन पुरस्कार के अतिरिक्त कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

२.१०.२ प्रमुख साहित्य / कृतियाँ

'प्रभा जी' के प्रमुख उपन्यास में *'छिन्नमस्ता', 'तालाबन्दी', 'आओ पेपे घर चलें'* आदि हैं। 'प्रभा जी' की अच्छी पहचान की बात करे, तो उसका श्रेय उनके उपन्यास *'आओ पेपे घर चलें'* को जाता है। *'आओ पेपे घर चले'* उपन्यास का प्रकाशन सन् १९९० ई. में हुआ। यह भी अन्य उपन्यासों की ही तरह स्त्री पर केन्द्रीत उपन्यास है। इस उपन्यास में स्त्री के दुख व पीडा का चित्रण किया गया है। पुरुष समाज में औरत हमेशा से ही रुदन करती आई है।

भारतीय उपन्यास में अनेकों बार नारी पर उपन्यास लिखे जा चुके हैं, किन्तु 'प्रभा जी' ने इस उपन्यास में अमरीकी औरत के भयानक सच को सामने रखने की कोशिश की है। 'प्रभा जी' कहती हैं, कि औरत होना ही उसे बर्दाश्त नहीं। हमें शुरु से ही यह एक धारणा स्थापित कर ली है, कि हमारी भारतीय नारी पुरुष समाज द्वारा अत्यधिक सताई जाती है। विदेशी औरत तो हमेंशा सुखी व आजाद ख्यालों से जीवन यापन करने वाली होती है। लेकिन इस उपन्यास में भोगविलास में डूबी अमरीकी औरत अन्दर से कितनी असहाय, अकेली व पीडित है, इसी का वर्णन किया गया है। अत: यह उपन्यास संवेदनशील भारतीय लेखिका की आँखों से देखी हुई अमरीकी औरत के जीवन की तस्वीर है। इस उपन्यास में पारिवारिक टूटन, उच्चवर्गीय जीवन के विरोध, बाहर और अन्दर के जीवन में तनाव, सम्बन्धहीनता, नकली जिन्दगी, पति–पत्नी की टकराहट में पिसते बच्चे, भोगविलास के पीछे अन्धी दौड, आर्थिक समृद्धि की कमी, संवेदन शून्यता का दर्द आदि सभी हमें गहरी अनुभूति के साथ देखने का मिलता है। अमरीकी स्त्री की जिन्दगी की अनेक विसंगतियों के साथ–साथ वहाँ के तूफानों की तरह झकझौंर देने वाले जीवन संधर्ष का अंकन किया गया है। इस उपन्यास में एक पेपे नाम के कुत्ते को केन्द्रीय पात्र के रुप में रखा गया है। पेपे इस उपन्यास में एक जीते–जागते सजीव पात्र के रुप में नजर आता है। 'प्रभा जी' ने पेपे कुत्ते के माध्यम से पशु में मानवीय संवेदना को भर देने की कोशिश की है।

'आओ पेपे घर चले' के बाद सन् १९९१ ई. में 'प्रभा खेतान' के *'तालाबन्दी'* उपन्यास का प्रकाशन हुआ। इस उपन्यास में लेखिका ने निजी प्रबन्ध और मजदूरों के अन्दर आपस में विरोधी हितों के टकराव और उससे उत्पन्न तनाव का रोचक रूप से वर्णन किया है। इस आपसी टकराव में मालिक की हमेशा जीत व मजदूर की ज्यादातर हार ही होती है। 'प्रभा जी' की सहानुभूति मजदूरों के प्रति अधिक है। लेखिका ने बहुत ही मानवीय सहानुभूति के साथ मजदूर वर्ग और प्रबन्ध के हितो के टकराव को समझने की कोशिश की है। प्रबन्धन व मजदूरों के टकराव के अलावा इस उपन्यास में पिता और पुत्र दोनों के झगडे के रूप में अनेक पीढियों से चले आ रहे संघर्ष का काफी विश्वसनीय रूप से चित्रण किया गया है। मालिक व नौकर का साथ हमेशा से ही चोली–दामन का साथ रहा है, किन्तु यह भी उतना ही सच है, कि दोनों में संघर्ष भी बहुत होते हैं। मालिक अपना साहब होने का हक या फिर रौब हमेशा नौकर वर्ग पर जमाता रहता है, वह स्वयं को सर्वेसर्वो समझने लगता है, किन्तु बेचारा मजदूर परिश्रम के बावजूद शान्ति से जीवन–यापन नहीं कर पाता है। पिता व पुत्र की कडवाहट को भी इस

उपन्यास में संवेदनशीलता के साथ अंकन किया है। कई बार हमें यह देखने को मिलता है, कि पिता पुत्र से नाराज है, या फिर पुत्र पिता से नाराज है, इसी तरह यह संघर्ष पीढी दर पीढी चला आ रहा है। इस पिता-पुत्र संघर्ष में दोनों ही की हार होती है, क्योंकि पिता ने उसे जीवन दिया है, इसलिए उसे गलत रास्ते पर या फिर गलत बाते करते हुए नहीं देख सकता है और पुत्र समझता है, कि पिता उसे हमेशा डाँटते ही रहते हैं और उससे तनिक भी प्रेम नहीं करते बस इसी का अंकन किया गया है।

'छिन्नमस्ता' का प्रकाशन सन् १९९३ ई. में हुआ। *'तालाबन्दी'* के दो वर्ष पश्चात् *'छिन्नमस्ता'* की रचना हुई। *'छिन्नमस्ता'* की केन्द्रीय पात्र प्रिया अपने गुजरे हुये वक्त को संवेदना के साथ जीती भी है और उसका विश्लेषण भी करती है। प्रिया के विमान में की हुई यात्रा व होटल में अपने मित्र-दम्पत्ति के साथ व्यतीत किये गये पन्द्रह दिनों के विश्राम का स्वगत-चिन्तन बडा ही हृद्यस्पर्शी सा जान पडता है। *'छिन्नमस्ता'* की प्रिया एक स्थान पर कहती है, कि औरत हर जगह ही रोती है, फिर चाहे वह सडक पर झाडू लगा रही हो या फिर खेतों में काम करते हुए या फिर बाथरूम साफ करते हुए वह हमेशा ही रूदन करती है। इस समाज की अपनी एक पहचान नारी का शोषण व उसका दमन बनी हुई है। पुरूष समाज, स्त्री-शोषण करना अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझता है, यह करना उसे सुख की अनुभूति कराता है। नारी का रूदन उसे ताकत प्रदान करता है। उसे लगता है, कि औरत कमजोर है, इसीलिए वह रोने का सहारा लेती है। आधुनिक युग में नारी शक्ति में अनेक बदलाव देखने को मिलते हैं, वह स्वयं अपनी लडाई लडने में सक्षम हो रही है, वह स्वयं को पहचानने की कोशिश कर रही हैं। इस युग में पुरूष के दृष्टिकोण में भी बदलाव आया है और स्त्री अपनी संकल्प शक्ति से युक्त हो रही है। किन्तु अभी यह स्त्री जागरूकता और संघर्ष शुरूआती दौर में ही है और कुल मिलाकर आज की नारी भोग्य वस्तु ही बनी हुई है। अपने स्वयं के अधिकार आज भी उसे पुरूष से ही प्राप्त होते हैं। बस बदलाव यहीं है, कि आज की नारी अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए अपना भाग्य स्वयं बनाने के लिए संघर्ष की राह पर चल रही हैं। *'छिन्नमस्ता'* में स्त्री की त्रासदी और उसके संकल्प का अंकन मिलता है। यह एक ऐसी स्त्री की संघर्ष कथा है, जो स्वयं को भावनात्मक रूप से लहूलूहान करते हुए अपने अस्तित्व को नये सिरे से परिभाषित करने की कोशिश कर रही है। इस उपन्यास की प्रिया एक ऐसा चरित्र है, जो सदियों से चली आ रही स्त्री शोषण की पक्ति से अलग पहचान बनाने में सफल होती है। वह शोषण का विरोध करती हुई

समाज और रूढ परम्पराओं को चुनौती देती हुई अपना अलग अस्तित्व बनाती है। इस उपन्यास में प्रिया अपना स्वतन्त्र काम शुरू करती है, जिससे कि वह आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न व स्वतन्त्र हो जाए। उसे किसी के सामने हाथ नहीं फैलाना पडें। वह इस समाज में पैसे-पैसे के लिए किसी की मोहताज न बने, इसीलिए वह अपना खुद का व्यवसाय शुरू करती हैं। किन्तु ऐसा करना इस समाज में आसान काम नहीं है, ऐसा करने की सजा भी भुगतनी पडती हैं। सजा के तौर पर प्रिया को घर छोडना पडता है। समाज के अनेकों तानों से गुजरना पडता है। किन्तु वह हार नहीं मानती और स्वतन्त्र जीने का दृढ निश्चय करती है और अन्त में उसकी जीत होती है। उसकी जीत का आशय है, नारी जाति की विजय हुई। अत: 'प्रभा जी' ने इस उपन्यास में स्त्री को पुरूष समाज से लडकर अपने अस्तित्व को प्राप्त करने की कहानी कहीं है। *'छिन्नमस्ता'* की प्रिया जैसी संवेदनशील आधुनिक नारी के लिए एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है।

'प्रभा खेतान' का उपन्यास *'अपने-अपने चेहरे'* सन् १९९४ ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में भी 'प्रभा जी' ने स्त्री को ही अपना विषय बनाया है, किन्तु इसमें स्त्री के दूसरे पहलू को उजगार करने की कोशिश की है। 'प्रभा जी' के पास नारी को लेकर कुछ प्रश्न, उत्तर व बोध हैं, जो उसने अपने-अपने चेहरे उपन्यास में अति संवेदनशीलता के साथ अंकन किए हैं। 'प्रभा जी' का मानना है, कि औरत का जीवन सिर्फ पुरूष की खोज ही नहीं है, बल्कि उसका अपना भी अस्तित्व है, उसकी अपनी भी सार्थकता है। एक औरत शादी करती है उसका पति कर्त्तव्य हो जाता है, उसके बाद बच्चे पैदा करना व उनका पालन-पोषण करना मातृत्व कर्तव्य हो जाता है, किन्तु पति, विवाह, बच्चे, व समाज से दूर हटके भी औरत का अस्तित्व है। इस उपन्यास की एक मुख्य पात्र रमा हमेशा एक ही बात बार-बार सोचती है *''वह प्यार तो एक बार करती है, बस एक बार। एक ही पुरूष से ।कभी शादी से पहले, कभी शादी के बाद। इसके बाद तो वह स्वयं को झेलना सीखती है।''* जी हाँ रमा कुछ यही सोचती है, कि एक नारी एक ही बार एक ही आदमी से प्यार करती है, फिर चाहे वह वो प्यार शादी से पहले करे या फिर शादी के बाद करें और अगर उसके बाद वह किसी डोर से बँधी है, तो वह अपने आप को झेलती रहती है। उपन्यास की पात्र रमा एक शादीशुदा और बालबच्चों वाले आदमी से प्यार करने लग जाती है। किन्तु हमारे भारतीय समाज में एक स्त्री का पुरूष दोस्त होना कतई गवारा नहीं है। अर्थात् एक नारी पुरूष के साथ दोस्ती नहीं कर सकती है। अगर वह यह चाहती है, कि समाज उसे स्वीकार कर ले, तो उसका उस पुरूष से शादी करना जरूरी है, तभी समाज उसे स्वीकार करेगा। अगर

स्त्री–पुरूष दोस्त होते हैं, तो उस औरत को दूसरी औरत कह कर हमेशा चिढाया जाता है। दोस्त को दूसरी औरत माना जाता है, किन्तु पहली औरत वह होती है, जिसकी माँग में पति के नाम का सिन्दूर होता है। जिसके माथे पर सिन्दूर लगा होता है, उसे ही उस पुरूष की अर्द्धांगिनी होने का बल प्राप्त होता है। वही उसकी पत्नी होती है, दूसरी औरत इस सुख से वंचित होती है, रमा भी इस उपन्यास में एक दूसरी औरत है, जिसकी माँग में सिन्दूर नहीं हैं, उसकी इस पीडा, अन्तर्द्वन्द्व को उपन्यास का केन्द्रीय विषय बनाया गया है। इस उपन्यास में रमा हमेशा टूटती, हारती व तार–तार होती रहती है। कोई उसे संभालने वाला नहीं होता क्योंकि समाज के लिए ऐसी स्त्री घृणा का पात्र होती है। वह एक विवाहित पुरूष से शादी भी नहीं कर सकती है, क्योंकि उसकी तो पहले ही शादी हो चुकी है और उसके बच्चे भी हैं, ऐसी स्थिति में वह हार मानने के अलावा क्या कर सकती हैं। बस इन्हीं का वर्णन 'प्रभा खेतान' ने *'अपने–अपने चेहरे'* उपन्यास में किया है।

'पीली आँधी' (१९९६) उपन्यास में 'प्रभा जी' ने तीन–पीढियों की औरतों का अंकन किया है, जो करीबन सौ–डेढ सौ साल की यात्रा करते हुए, अपनी–अपनी बात कहते हुए हमारे आज तक पहुँचती है। 'प्रभा जी' ने इस उपन्यास में बंगाली परिवेश को अपना विषय बनाया है। नई–नई चुनौतियों की रचना करने और उन्हें दृढता पूर्वक झेलनेवाली इस औरत की कहानी इस उपन्यास में है। इस उपन्यास की स्त्री अपने जीवन का चुनाव स्वयं अपनी तरह से करना चाहती है। वह स्वयं ही पैसा कमाने के तरीके खोजती है, जिससे की वह आत्मनिर्भर बन सकें । इस आत्मनिर्भर बनने के बीच उसे अनेक कठिनाईयों का सामना करना पडता है, जिसमें वह मानसिक व भावनात्मक दोनों ही तरह अनेकों बार आहत होती हैं। इस उपन्यास में भी नारी शोषण और विद्रोह को अपना विषय बनाया है। उपन्यास की एक मुख्य पात्र सोमा है, जिसका पति नपुंसक है, फिर भी सोमा उनके परिवार के मान–सम्मान के लिए स्वयं की बलि देने को अभिसप्त है। सोमा विद्रोह करती है और परम्परागत नारी संहिता के सारे नियमों व रीति–रिवाजो को अपने कदमों के नीचे रौंदती हुई घर से बाहर निकल जाती है। वह कब तक अन्दर रहकर अपने–आप को मारती रहती। यह घुटन ही उसकी ताकत बन गई, और उसने घर से बाहर निकलने का कठिन फैसला ले लिया। वह जानती थी घर से बाहर उसके लिए जीवन जीना सहज व सरल नही हैं, किन्तु उसे अन्दर रह कर घुटन भरे माहौल में भी रहना मंजूर नहीं था। इस उपन्यास में 'प्रभा जी' ने आधुनिक नारी का उदाहरण प्रस्तुत किया है, वह असाधारण व

नया है। इसमें मारवाडी समाज की स्त्रियों की व्यथा को कहा गया है। मारवाडी समाज राजस्थान का एक ऐसा समाज है, जहाँ औरतो को घर से बाहर निकलने की इजाजत नहीं होती है, उसके लिए अनेको नारी संहिता के नियम बनाए हुए है। अतः इसमें तीन पीढियों, चाची, बडी माँ और सोमा सभी अपनी-अपनी पीडा अपने-अपने ढंग से भोगती है। मारवाडी समाज में औरत की पीडा व व्यथा को मार्मिकता के साथ 'प्रभा जी' ने अंकन किया है। इस उपन्यास में मारवाडी समाज की औरतों के संघर्ष व दुख का वर्णन है। इसमें यह दुख मारवाडी समाज की सभी औरतों का दुख बन गया है। यह बडा दुख ही *'पीली आँधी'* का प्रतीक बन गया है। सब कुछ एक पीली आँधी की तरह उजड जाता है। तत्पश्चात् एक छोटा सा अंकुर प्रस्फुटित होता है, धीरे-धीरे वह फलने-फूलने लगता है और यही अंकुर इस उपन्यास की केन्द्रीय वस्तु है। इस उपन्यास में एक परिवार की कहानी नहीं कहीं गयी है, बल्कि समस्त कुल की कहानी कहीं गयी है। यह राजस्थान के उन लोगों की जीवन व्यथा है, जो प्राकृतिक प्रकोप व शोषण के भयंकरता से बचने के लिए देवासर की ओर प्रस्थान कर गए। यह उस समय की कहानी है, जब भारत अंग्रेजी शासन का शिकार था और खास कर राजस्थान, परिवहन, सिंचाई, और आधुनिक शिक्षा से वंचित था। वहाँ की समस्त जनता सामन्ती निरकुंशता की शिकार थी। यह एक *'पीली आँधी'* थी, जिसमें मारवाडी समाज पत्तों की तरह उडते हुए बंगाल, बिहार पहुँचकर अपना नवीन भाग्य बनाने की कोशिश करते हैं। कठिन मेहनत व अपने परिवार का सहयोग तथा सामाजिक टकराहटों से स्वयं को बचाते हुए अपने लिए सम्मानपूर्ण जगह बनाना ही उनका प्रमुख ध्येय था। इस उपन्यास में मारवाडीयों की शानो-शौकत के पीछे छिपे संघर्ष के साथ-साथ उनके जीवन के अर्न्तविरोधों को भी इस कथा में उभारा गया है। जिन्दगी चाहे रेतीली हो या सीलन भरी दोनों ही दुखदायी है और इनसे संघर्ष करना, मुक्त होने के लिए छटपटाना ही मनुष्य की नियति है। मारवाडी समाज के दर्द, अपनी जमीन से कट जाने का दुख, जी-तोड लगन से मेहनत आदि सभी का 'प्रभा जी' ने अच्छा चित्रण किया है। मारवाडी समाज की अन्धी परम्पराओं उनके रूढिवादी संस्कारों में जकडी, टूटती जिन्दगी का चित्रण 'प्रभा जी' ने बडी ही सफलता पूर्व किया है। मारवाडी समाज अपना राज्य छोडकर बंगाल व बिहार में जाते हैं, तो उन्हें अनेक परेशानियों से गुजरना पडता है। जैसे यहाँ पलायन करके आयी हुई राधा कह रही है:-

"पक्कीदीवारों के ऊपर टीन के छप्पर की दुकान बन गई थी, पीछे वैसी ही कोठरी। आँगन और गली बरसात में कीचड से भरे रहते, दीवारों में सील न आ गई थी। चौमासे के भीगेपन से, सीलन से, राधा बाई का जी घुटने लगता। रात को मच्छरों के मारे सोना हराम हो जाता। उनको अपने देश ही हेली याद आती कहां तो वह सूखी हवा, खुला माहौल, पक्के मकान और सुनहरी बालू में धसते कदम और कहाँ यह कीचड कांदा टीन के छाजन, काल बैशाखी का तूफान उठता तो छज्जे कडकडाने लगते। ऐसा लगता मानो सबो ले उडेगा। और बरसात में अनवरत टपकता हुआ पानी।" *(पीली आँधी, पृ. ५२)*

यहाँ दूर देस से आई राधारानी, यहाँ के वातावरण व माहौल के बारे में कह रही है, कि राजस्थान में सीलन या फिर गीलापन कतई नहीं था, क्योंकि वहा तो बालू मिट्टी है। अतः ज्यादातर सूखापन ही रहता है। यहाँ पर ये सभी लोग अभी रहने आए है, तो इतनी कमाई नहीं हुई की पूरा मकान पक्का करवा ले, अतः उन्होंने पक्की दीवारों के ऊपर टीन डाल रखी है, जिसमें आगे की तरफ दुकान का हिस्सा व पीछे की तरफ रहने की कोठरी बना ली। बाहर के आँगन व गली ज्यादा बारिस के कारण हमेशा कीचड के भरे रहते हैं। चारों तरफ की दीवारों में सीलन सी आ गई है। चारों तरफ के गीलेपन से राधा का दम घुटने लगता है। चौमासे अर्थात् बरसात के मौसम में मच्छर ज्यादा ही परेशान कर रहे हैं। राधा को अपने देश की हवेली याद आने लगती है। वह सोचती है, कि वहाँ पर सीलन भरी हवा के बजाय सूखी हवा व खुला माहौल हुआ करता था, साथ ही रहने के लिए टीन की बजाय पक्के मकान हुआ करते थे। वहाँ जब जोर की आँधी आती थी, तो छज्जे तेज हवा के कारण गर्जना करने लगते थे, ऐसा लगता था, कि मानो अभी सारी हवेली को अपने में समेट लेगा और उडा जायेगा। अतः यहाँ पर परदेशी लोगों के दर्द को उजागर किया गया है। मारवाडी समाज राजस्थान से ताल्लुक रखता है, अतः यहाँ के लडके-लडकियों का विवाह बचपन या फिर छोटी उम्र में कर दिया जाता है। आज आधुनिक युग में काफी कुछ बदलने लगा है, किन्तु कभी-कभी ऐसे उदाहरण अभी भी सामने आ ही जाते हैं, जिसमें एक कम उम्र की युवती की शादी बडे उम्र के आदमी से हो जाती है। ऐसा ही *'पीली आँधी'* उपन्यास में हुआ। पद्मावती का विवाह अपनी से दोगुनी उम्र के माधो बाबू से हो जाता है। माधो बाबू को यह विवाह बहुत खटकता है, बस इसी सम्बन्ध में माधो बाबू कह रहे हैं:-

"हाँ उनका संक्षिप्त उत्तर था। घर से निकलते हुए उन्होंने एक उडती हुई नजर पत्नी पर डाली और मन ही मन सोचा मैंने इसके प्रति बहुत अन्याय किया सब को सब कुछ दिया, इसको कुछ नहीं दे सका। यह तो रीती ही रह गई। मेरे से उमर में यह आधी है, मुझे इससे ब्याह नही करना चाहिए था । एक गलती सौ गलतियों को जन्म देती है। गलतियों का सिलसिला चालू हो जाता है। गाडी में बैठने के बाद उन्होंने फिर सोचा मेरे भीतर वैगन को लेकर जितनी हलचल मचती है, उतनी पत्नी की घर की समस्या के बारे में क्यों नहीं ? एक और खान खरीदने की बात चल रही हैं, उसके ख्याल मात्र से ही सारे बदन में सिहरन होने लगती हैं एक अद्भुत आनंद की अनुभूति यह आनंद किसी और बात में क्यों नहीं मिलता ?" *(पीली आँधी, पृ. १०४)*

माधो बाबू अपनी पत्नी के बारे में सोच रहे हैं, कि मैंने अपनी पत्नी के साथ न्याय नहीं किया, बल्कि अन्याय किया है। सबसें बडी बात पहले तो यह मुझसे उमर में आधी है, अत: मुझे विवाह ही नहीं करना चाहिए था और दूसरी बात अगर विवाह किया है, तो मुझे इसे भी प्यार देना चाहिए, इसका भी ध्यान देना चाहिए। नौकरी की भाग-दौड में मैं अपनी पत्नी को भूल ही गया था। यह तो सच है, कि मैं अपनी पत्नी से प्रेम तो करता हूँ, क्योंकि उसकी याद आते ही मेरे सारे शरीर में गुदगुदी सी होने लगती है, रोम-रोम सीहर उठता है। अत: इस प्रकार 'प्रभा जी' ने अपने उपन्यासों में ज्यादातर कलकत्ता के महानगरी परिवेश का बहुत ही विश्वास के साथ चित्रण किया है। मारवाडियों के राजस्थान से कलकत्ता आकर व्यापारियों में तब्दील होने, उनके बनने व बिगडने, एक प्रकार नयी संस्कृति को जन्म देने आदि का चित्रण उनके उपन्यासों में देखा जा सकता है।

२.११ अनामिका

२.११.१ अनामिका का परिचय

उपन्यासकार 'अनामिका' का जन्म सन् १९६१ ई. के उत्तरार्द्ध में मुजफ्फरपुर में हुआ। मुजफ्फरपुर बिहार का ही एक शहर है। अनामिका ने अंग्रेजी साहित्य में पी.एच.डी. व एम.ए. किया। 'अनामिका जी' दिल्ली के एक प्रतिष्ठित महाविद्यालय में अंग्रेजी साहित्य का अध्यापन कराती हैं। 'अनामिका जी' ने कहानी, संस्मरण, कविता आलोचना व उपन्यास आदि के लेखन में हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

'अनामिका जी' को अपनी कृतियों के लिए अनेक पुरूस्कारों से सम्मानित किया गया। उनमें से राजभाषा परिषद् पुरूस्कार (१९८७), भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार (१९९५), साहित्यकार सम्मान (१९९७), गिरिजाकुमार माथुर सम्मान (१९९८), परम्परा सम्मान (२००१) और साहित्य सेतु सम्मान (२००५) आदि सम्मान प्रमुख हैं।

२.११.२ प्रमुख साहित्य / कृतियाँ

'अनामिका जी' की प्रमुख कृतियाँ निम्न है :-

आलोचनाः *'पोस्ट एलिएट पोएट्रीः उन वॉएज फ्रोम कोफ्लिक्त टु आइसोलेशन इन क्रिटिसिज्म डाउन दि एजेज', 'ट्रीटमेंट ऑर लव ऐंड डेथ इन पोस्ट वार अमेरिकन विमेन पोएट्स'*

विमर्शः *'स्त्रीत्व का मानचित्र', 'मन माँजने की जरूरत', 'पानी जो पत्थर पीता है'*

कविताएँः *'गलत पते की चिट्ठी', 'बीजाक्षर', 'समय के शहर में', 'अनुष्टुप', 'कविता में औरत', 'खुरदुरी हथेलियाँ', 'दूब-धान', 'एफ्रो-इंग्लिश पोएम्स', 'अटलांत के आर-पार' (समकालीन अंग्रेजी कविता), 'कहती है औरते' (विश्व साहित्य की स्त्रीवादी कविताएँ)।*

कहानीः *'प्रतिनायक'*

संस्मरणः *'एक वो शहर था', 'एक थे शेक्सपीयर', 'एक थे चार्ल्स डिकेंस'*

उपन्यासः *'अवान्तर', 'दस द्वारे का पींजरा'*

अनुवादः *'नागमंडल (गिरीश कार्नाड)', 'रिल्के की'*

'अनामिका जी' की कहानी, संस्मरण, कविता आलोचना व उपन्यास आदि के लेखन में महत्वपूर्ण भूमिका है। सर्वप्रथम हम इनके उपन्यास *'दस द्वारे का पिंजरा'* का वर्णन यहाँ करेंगे। 'अनामिका जी' का मानना है, कि शादी का बन्धन एक ढोस सामाजिक व्यवस्था है। शादी में जीतने भी रीतिरिवाज होते हैं, सब में समाज शामिल होता है। हम जहाँ भी रहें, चाहे अपने मायके या ससुराल, लेकिन वहाँ भी समाज को हम अपने आस-पडौस में ही पाते हैं। समाज हमारा कभी पीछा नहीं छोडता फिर चाहे व शिक्षा जगत ही क्यों ना हो। शादी के बाद दो लोगों का मिलन सहजीवन कहलाता है। वहीं खुले द्वार का पिंजडा है, जब तक इसमें प्रेम की मिठास बनी रही, तब तक साथ रहे व जब लगे की जीवन नीरस हो रहा है, यह रिश्ता भी घीसटता जा रहा है, तब दोनों ही अपने-अपने रास्ते पर हो लेते हैं। 'अनामिका जी' का भी यहीं मानना है, कि पदों और रिश्तों दोनों को ही हमेशा स्थायी समझने की भूल मत करना, दोनों को ही अस्थायी समझो और जब तक उसके साथ जुडे रहो, जब तक तुम्हें लगे कि तुम सहज जीवन जी रहे हो। शादी के पश्चात् बच्चा होने से पहले-पहले आप एक साथ या फिर अलग रहने का फैसला कर सकते हैं, किन्तु एक बार यदि बालक उतपन्न हो गया तो, फिर उसके बडे होने तक माँ-बाप का साथ रहना उचित है। 'अनामिका' का मानना है, कि विवाह का बन्धन तो ऐसा फेविकोल का बन्धन है, कि घसीट मारता है, पर टूटता नहीं। इस उपन्यास में आधारशिला नाम की संस्था का जिक्र किया है, जो गरीब और अनाथ बच्चों, अकेली औरतों और अनादृत बूढों का एक अंतरंग संयुक्त परिवार है। यह एक तरह का लॉज है, जो हमारे-तुम्हारे आपसी सहयोग से चलाया जाता है, विदेशों से पैसे नहीं लेता। यहाँ सभी मिलझुल कर साथ रहते हैं। पढे-लिखे बडे लोग ही छोटे अनाथ बच्चों को पढा देते हैं, साथ में किस्से-कहानियाँ भी सुनाते हैं। यहाँ की औरतें आसपास के ऑफिसों के लिए टिफिन तैयार करके संस्था की मदद करती हैं। साथ ही छोटे-छोटे कुटीर उद्योगों के माध्यम से सभी संस्था का खर्च निकाल लेते हैं। एक प्रसंग में पात्र रमाबाई एक कथा कह रही हैं, वह कथा पूरी भी नहीं कर पाई थी, कि सभी पण्डितों को क्रोध आ गया

> **"छोटा मुँह बडी बात ? ये केसी निर्लज्जता है। एक कुमारिका के मुख से ऐसे प्रसंगों की ऐसी खुली चर्चा, वह भी इतने वरिष्ठ विद्वानों के सम्मुख ? धिक है**

Smt. Hansa Mehta Library, The M. S. University of Baroda

अनन्तशास्त्री ? धिक्कार ? अब हमने समझा कि आप क्यों जाति-बहिस्कृत हुए ? शील-संकीच भी एक चीज है ? मूर्तिभंजन की ऐसी कुचेष्य, वह भी कन्या के द्वारा ? देवता का दाम्पत्यकलह सार्वजनिक चर्चा का माध्यम क्यों हो चला ? घर की बात घर में रखने का शील तो एक सामान्य नियम है...... देवताओं के गृह कलंक के प्रसंग वह भी यह दिखाने के लिए कि वे स्त्रियों और श्यामवर्णियों के प्रति असंवेदनशील थे: घोर कुसंस्कार ही मानेंगे इसको ?" *(दस द्वारे का पिंजरा, पृ. २५)*

रमाबाई सभी पण्डितों की सभा में कथा वाचन कर रही थी, किन्तु उस कथा वाचन में रमा के द्वारा सूर्य देवता व शनिदेवता के ग्रह कलह की बात से सभी पण्डित लोग नाराज हो गए। उनके अनुसार देवताओं के घर-परिवार के झगडों को सबके सामने नहीं रखना चाहिए, बल्कि उन्हें अन्दर ही दबा देना सम्मान की बात है। सभी पण्डित गण रमा को कुछ इस प्रकार कह रहे हैं, कि यह केसी बेशर्मी है, एक बिनब्याही कन्या के मुँह से ऐसे प्रसंगों की खुले आम चर्चा की जाए, वह भी इतने बडे-बडे प्रकाण्ड पण्डित के सामने। अर्थात् हमें पण्डितों का सम्मान रखने हेतू उनके सामने ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिए, जिससे उनका अपमान हो। सभी पण्डित अनन्नशास्त्री से कह रहे हैं, कि तुम्हें धिक्कार है, अब हमें यह पता लगा, कि तुम क्यों जाति से निकाले गए हो। अर्थात् अनन्तशास्त्री अपनी इन्हीं हरकतों के लिए जाति से बाहर कर दिये गए थे, ऐसा पण्डितों का मानना है। शुशील व शर्म भी एक चीज होती हैं, जो कुवांरी कन्या में होनी चाहिए। देवताओं के अपमान को ऐसी कुचेष्ठा वह भी एक कन्या द्वारा धोर अन्याय है। पहली बात तो यह कि देवताओं के वैवाहिक जीवन के झगडों को हमें सार्वजनिक बहस का मुद्दा बनाना ही नहीं चाहिए। अपने घर की बात घर में ही रखना शीलता का एक साधारण सा नियम है, जिसे सब जानते हैं, पर तुम लोगों ने इस नियम को भंग किया है। तुम लोगों ने यह सब इसीलिए किया है, कि वह औरतों और श्याम रंग के लोगों के प्रति असंवेदनशील थे। इस समस्त वाकये को हम सभी लोग कुसंस्कार अर्थात् बुरा संस्कार ही मानेंगे। अत: हमें इस उपन्यास में यह देखने को मिला, कि आज भी पण्डित लोग कितने संकीर्ण विचार लेकर जी रहे हैं, आज भी कन्याओं को अच्छी नजर से नहीं देखा जाता है। देवताओं की गलतियाँ वे लोग छुपाने के लिए कहते हैं, किन्तु समाज में अगर कोई ऐसी गलती करे तो उसे जाति से बहिष्कृत कर देते हैं।

"ये हस्ती क्या चीज होती है ? ' कानन अक्सर सोचती ? खुद को जानना ही खुदा को जानना है' – यह तो ढेला बाई अक्सर समझाती पर खुद को जानने का एक अर्थ अपनी वर्गीय, जातीय और धार्मिक अस्मिताएँ पहचानना भी है क्या ? कि कौन शाखा कहाँ उलझी ? इतिहास कहाँ क्रूर हुई प्रकृति । और फिर राजनीतिक आन्दोलनों से इतिहास का भूल–सुधार लाल कलम से गोंले बना-बनाकर, जैसे शान्तिनिकेतन में गुरूदेव बच्चों की कविताएँ शुद्ध करते थे ?" *(दस द्वारे का पिंजरा)*

इस प्रसंग में कानन इस प्रकार से मन ही मन सोच विचार कर रही हैं, कि यह हस्ती भी क्या चीज होती हैं अर्थात् यह रूतबा क्या होता है। कानन के अनुसार स्वयं को पहचान लेना ही भगवान को पहचान लेने के बराबर है।यह सब ढेला बाई कानन को हमेशा समझाया करती थी। वह कहां करती हैं, कि स्वयं को पहनाने का एक आशय यह भी है, कि हमें अपने वर्ग, जाती और धार्मिक अस्मिता को भी पहचानना है। हमें यह देखना है, कि कौन सी शाखा कहां उलझी हुई है अर्थात् उस जातिगत व धार्मिक रूप से उलझी शाखा को हमें फिर से ठीक करना है।

यह इतिहास कहाँ पर इतना निर्दयी हुआ था, व कहाँ पर प्राकृतिक प्रकोप इतना क्रूर हुआ था। इतिहास में हमें यह भी झांक कर देखना चाहिए, कि कहाँ–कहाँ उसमें भूली–बिसरी चीजों का सुधार हुआ है। इसका उदाहरण 'अनामिका जी' ने शान्तिनिकेतन से दिया है। शान्तिनिकेतन में गुरूदेव हमेंशा बच्चों को कविताएँ पढाया करते थे और उनकी समस्त गलतियों का शुद्धीकरण किया करते थे। इसी का वर्णन इस प्रसंग में आया है। इस उपन्यास की पात्र रमाबाई ने अपना धर्म बदल लिया, किन्तु उसका यह धर्मान्तरण भी राष्ट्रीय मुद्दा बन गया था। धर्म के बदलाव के बावजूद भी रमाबाई ने हिन्दू जीवन जीने के मुख्य सूत्र नहीं छोडें। धर्म बदलने के बावजूद वह शाकाहारी ही रही। रमाबाई ने अन्त तक अपने पुराने पण्डिती ढंग से पूजा–अर्चना करना भी नहीं त्याग किया। उसका मानना था, कि अगर हम नये साथी बना ले, तो भी हमें पहले वाले साथियों को नहीं भूलना चाहिए। रमाबाई अपने नये रास्ते पर चलकर यह महसूस करती हैं, कि पुरानावाला रास्ता भी वही जाता था, किन्तु ऊचाँ–नीचा होने के कारण चलने में थोडी परेशानी अवश्य हो रही थी। उसके कहने का एक यह आशय यह भी है, कि वह रास्ता परेशानियों की वजह से चलने में कठिन हो गया था, लेकिन दोनों रास्ते तो एक समान ही है। इन सबमें रास्ते

का कोई दोष नहीं है, बल्कि दोष तो उनका है, जो राह को परेशानी व तकलीफों से दूभर बना देते हैं। अत: 'अनामिका जी' ने *'दस द्वारे का पींजरा'* उपन्यास के माध्यम से हमें यह बताने की कोशिश की है, कि इन्सान हमेशा वहीं रह जाता है, बस मायने बदल जाते हैं। औरतें व निम्न जाति के लोग आज भी इन समस्याओं से गुजर रहे हैं, जो पहले भी हुआ करती थी। 'अनामिका जी' ने यह बताने की कोशिश की है, कि पहले तो पिता की सत्ता स्त्री पर रहती है, बाद में पति की सत्ता हो जाती है। स्त्री कभी स्वतन्त्र फैसले नही ले सकती हैं, अत: ऐसी स्थिति में नारी की मुक्ति खोजना पृथ्वी और आसमान के मध्य पुल बनाने जैसा प्रतीत होता है। *'दस द्वारे का पींजरा'* उपन्यास में रहने वाले खुबसूरत पक्षी भी खुले आकाश में अपनी उडान भरना चाहते हैं, किन्तु इसके लिए हमें असम्भव को सम्भव बनाना होगा, तभी पींजरे में बन्द जिन्दगी खुली हवा में साँस ले पायेगी। इस उपन्यास में संस्कृति की राह पर सफर करने वाले ऐतिहासिक पात्रों का भी अंकन है। इनमें फेनी पावर्स, मैक्सक्युलर, स्वामी दयानंद, महादेव रानाडे, केशवचन्द्र सेन, ज्योतिबा फुले, भिखारी ठाकुर, महेन्द्र मिसिर आदि विश्व-विख्यात हस्तियाँ शामिल है, जिनके बगैर हमारी आधुनिकता अपनी मौजूदा शक्ला-सूरत हासिल नहीं कर सकती थी। सबसे बडी बात यह है, कि इन पात्रों के साथ-साथ इस सांस्कृति की राह पर हिन्दू समाज का पतित ब्राहाम्णवादी रूढिवाद, प्यार और नारी-पुरूष के बीच के रिश्तों का विमर्श, ब्रिटिश और अमेरिकी दोनों की आधुनिकता का अन्तर, समाज सुधार का आन्दोलन और रूकमाबाई के मुकदमे जैसे प्रकरण भी अपनी सफर कर रहे हैं। इस उपन्यास में दो नायिकाएँ पात्र है, जिसमें से एक तो ढेलाबाई व दूसरी पंडिता रमाबाई। दोनों की आत्मीय कहानी के जरिए उपन्यासकार 'अनामिका' ने अपने पात्रों और हाल परिस्थितियों के आस-पास भारतीय समाज का एक ऐसा तत्कालीन वातावरण बनाया है, जिसमें आधुनिकता के प्रभाव से पुरानी रूढ परम्पराओं का दुबारा से संस्कार करने की प्रक्रिया चलती दिखाई देती हैं।

२.१२ भगवानदास मोरवाल

२.१२.१ भगवानदास मोरवाल का परिचय

'भगवानदास मोरवाल जी' का जन्म २३ जनवरी सन् १९६० ई. को हरियाणा के जिला गुडगाँव के काला पानी कहे जाने वाले मेवात के छोटे से कस्बे नगीना में हुआ। उनका जन्म एक अत्यन्त पिछडें-मजदूर परिवार में हुआ। 'भगवान दास मोरवाल जी' की प्रारम्भिक शिक्षा अपने इसी पैतृक कस्बें में सम्पन्न हुई। इसके बाद में नूहं के यासी मेव डिग्री कॉलेज से स्नातक किया। स्नातक करने के बाद राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से एम.ए. हिन्दी से किया। एम.ए. करने के पश्चात् 'मोरवालजी' ने पत्रकारिता में डिप्लोमा किया। डिप्लोमा भी इन्होंने राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से ही किया। इसी बीच सात वर्षो तक (१९८१ से १९८७) तक स्वतन्त्र पत्रकारिता और लेखक का काम भी किया।

'भगवानदास मोरवाल जी' को पत्रकारिता और लेखक कार्य के लिए अनेकों सम्मानों से नवाजा गया, जिनमें से हिन्दी अकादमी सम्मान, कथाक्रम सम्मान (२००६), साहित्यिक सम्मान (२००५), साहित्यिक कृति पुरस्कार (१९९४) साहित्यिक कृति सम्मान (१९९५), राजाजी पुरस्कार (१९९५ तथा १९८५ एवं १९९१) प्रमुख है।

२.१२.२ प्रमुख साहित्य / कृतियाँ

'भगवानदास मोरवाल' प्रमुख रचनाओ में *'काला पहाड'* (१९९९), *'बाबल तेरा देश में'* (२००५), *'रेत'* (२००८) आदि उपन्यास; *'सिला हुआ आदमी'* (१९८६), *'सूर्यास्त से पहले'* (१९९०), *'अस्सी मॉडल उर्फ सूबेदार'* (१९९५), *'माँ और उसका देवता'* (२००८) आदि कहानियाँ; *'दोपहरी चुप है'* (१९९०) कविता; *'कलियुगी पंचामत'* (१९९७) बच्चों के लिए रचना, प्रमुख है। 'भगवानदास मोरवाल' ने दो पुस्तकों का सम्पादन भी किया है।

'भगवानदास मोरवाल जी' का प्रथम उपन्यास *'काला पहाड'* सन् १९९९ ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास का प्रमुख विषय देश में बढती हुई साम्प्रदायिकता पर अतीव संवेदना से भरा हुआ विचार-विमर्श है। अर्थात् हमारे देश में सम्प्रदायों को लेकर रोज जो दंगे फसाद होते हैं, उन्हीं का चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। कुर्सी व धन प्राप्त करने के लिए राजनीतिक

व सम्प्रदायवादी शक्तियाँ किस तरह सामान्य आम आदमी को बहकाकर उसकी शान्ति व चैन छीन लेती हैं। जी हाँ ये प्रभावशाली शक्तियाँ हमेशा आम आवाम को गुमराह करती हैं, जिससे की उसका सूकून छीना जा सकें। उस आम आदमी के जीवन को नरक में बदल देती हैं। यही इस उपन्यास का कथ्य विषय है। 'भगवान दास मोरवाल जी' ने हरियाणा, उत्तर प्रदेश और राजस्थान की सीमा पर स्थित मेवात को, विशेष रूप से वहाँ के एक गाँव नगीना, जहाँ उनका जन्म हुआ है, को ही अपना कथा विषय बनाया है। नगीना कस्बाँ जहा इस्लाम धर्म के मेव नाम की जनजाति रहती हैं। वहाँ पर थोडी संख्या में हिन्दू जाति भी बसती हैं। मेव व हिन्दू दोनों ही जातियाँ आपस में सद्भाव व शान्ति के साथ जीवन बसर करते हैं। जनजाति के पूर्वजों ने बाबर के खिलाफ राणा साँगा का साथ दिया था और देश के बँटवारे के समय पाकिस्तान जाने से मना कर दिया गया था। इस पूरे देश में धर्म, मजहब और जाति के नाम पर कोई भेदभाव नहीं है और हिन्दू मूसलमान एक दूसरे के पर्व-त्यौहारों में सरल भाव से सम्मिलित होते हैं। जब पुत्र का जन्म होता है तो हिन्दू 'दादा खानू और पचपीर पर गलेप' चढाते हैं और मुस्लिम औरतें हिन्दुओं की तरह वर व दुल्हन की आरती उतारती हैं तथा चाक पूजने की रस्म करती हैं। किन्तु ऐसी शान्ति राजनीति व धर्म के ठेकेदारों को कहाँ मंजूर है, वो इस शीतल और शान्त जीवन के तालाब में साम्प्रदायिकता का जहर घोलकर इसे दूषित बना देते हैं और भाईचारे से बनी संस्कृति को विनाश की और अग्रसर कर देते हैं। वे आम आदमी को धर्म का नाम लेकर गुमराह करते हैं, ताकि उस आग पर वे अपनी सत्ता की रोटियाँ सेंक सकें। साम्प्रदायिकता का भाव किस प्रकार सीधे-सादे लोगों के मन में भर दिया जाता है और झूठी अफवाहों के द्वारा अविश्वास, आतंक और डर पैदा कर उसे जुनून में बदल दिया जाता है। इन सभी का बडा ही प्रभावकारी वर्णन *'काला पहाड'* में किया गया है। इस उपन्यास में बताया गया है, कि यह धार्मिक आन्दोलन ही बावरी मस्जिद के विनाश का कारण बना था और यही जुनून उसके पश्चात् हुए साम्प्रदायिक दंगो का प्रमुख कारण है। इन धार्मिक साम्प्रदायिक दंगो में देश बहुत हताहत हो जाता है। उसमें बहुत से अल्पसंख्यक लोग तो वहाँ से पलायन कर जाते हैं, वो सभी उस जगह रहना ही नहीं चाहते। साथ ही साथ जिन्होंने अपराध नहीं किया अर्थात् जो निरपराध है, उन व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया जाता है। न जाने इन दंगो ने कितने ही निरपराध लोगों की जान ली है। अपराधी प्रवृत्ति के लोग दंगा-फसाद का फायदा उठाकर लोगों के घरो में चोरी व लूटपाट भी करते हैं। इस उपन्यास के केन्द्रीय पात्र बुढा और अनपढ सलेकी है, जो इस जहरीली मानसिकता के खिलाफ संघर्ष करता हैं। वह समाज के ठेकेदारों के सामने इसे रोकने हेतू खडा हो जाता है,

कि उसे शहर में विध्वंस न फैलने पाये। पर कुछ आदमी भला इस साम्प्रदायिकता की आग को कैसे शान्त कर सकते हैं, अत: अन्त में बूढा सलेकी भी हार जाता है। पर हार जाने के बाद भी वह आनेवाले नौजवानों के लिए एक चुनौती छोड जाता है। उपन्यासकार ने एक ही घर में पनप रही दो विचारधाराओं का वर्णन किया है। सलेकी व उसका बेटा बाबू खाँ दोनों एक-दूसरे के आमने सामने खडे होते हैं। दोनों ही हार मानने को तैयार नहीं है। यह हमारे लिय बडी शर्म की बात है, कि आज इन धार्मिक दंगो ने बाँप-बेटे को भी एक-दूसरे के आमने-सामने लाकर खडा कर दिया है। उन दोनों की टकराहट दिखाकर उपन्यासकार ने साम्प्रदायिक शक्तियों व मानवीयता का द्वन्द दिखाया है। सत्ता की कुर्सी पर बैठे नेता गण आम जनता से बहुत दूर हो गए है इसका व्यंग्य पूर्ण चित्रण इस उपन्यास में देखने को मिलता है। साम्प्रदायिकता का जहर अभी शहरों से गाँवों में भी पहुँच गया है, जिससे ग्रामीण अर्थ व्यवस्था टूट रही हैं। आज गाँवों के अधिकतर निवासी शहरों की और रोजी-रोटी के लिए पलायन कर रहे हैं। खेती में मुनाफा इतना कम हो गया है, कि किसानो के भूखों मरने की नौबत आ गई है, जिससे वे शहर में जाकर मजदूरी करके खुशहाली भरा जीवन जीने लगते हैं। *'काला पहाड'* उपन्यास की कथा अँचल विशेष से सम्बन्ध रखती हैं। अत: यह कथा अपनी मूल प्रकृति से समस्त देश का प्रतिनिधित्व करती है। यह सारे भारत की सच्चाई है कि साम्प्रदायिकता अपना जहर अभी समस्त देश में धीरे-धीरे फैला रही है, अत: हमें डटकर उसका सामना करना होगा, न कि उसके बहकावे में आकर अपने ही देश का सीना छलनी करना है। अत: बस यही सन्देश 'मोरवाल जी' अपने उपन्यास *'काला पहाड'* के जरिए देना चाहते हैं।

'काला पहाड' की सफलता के बाद 'भगवानदास मोरवाल' का दूसरा उपन्यास *'बाबल तेरा देश में'* सन् २००५ ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में भी 'मोरवाल जी' ने उसका केन्द्रीय विषय नारी को रखा है। इस उपन्यास में स्त्री के उन दुखो का अंकन किया गया है, जो अपने ही घर में रहते हुए भी सुरक्षित नहीं है। इस दुख को उपन्यासकार ने एक अबेध किला बताया है। एक ऐसा किला जो कोई तोड नही सकता, जिसकी दिवारे इतनी मजबूत है, कि वह भेदनीय नहीं है। स्त्री के दुखों के आवरण के दीवार रूपी किले में अनागिनत सुरंगे भी मौजूद है, जिनमें अँधेरा ही अँधेरा दिखाई पडता है। स्त्री किसी भी सुरंग से निकलकर दूसरी सुरंग में जाने का प्रयत्न करती है, तो वहा घात लगाकर कहीं उसे जन्म देने वाला पिता, कहीं भाई, कहीं ससुर, तो कहीं-कहीं पति के रूप में एक आदमखोर भेडिया घात लगाए बैठा है। अर्थात् पिता, ससुर,

भाई व पति को आदमखोर की संज्ञा दी है। सुरंग के प्रत्येक द्वार पर एक पहरेदार हमेंशा तैनात खडा रहता है। उसके हाथों में धर्म ग्रन्थ के उपदेश होते हैं, जिसकी धारदार नुकीली बरछी से एक नारी हमेशा आहत होती हुई आई है। अर्थात् विवाह से पहले पिता द्वारा हमेशा नये-नये नियम स्त्री के लिए बना दिए जाते हैं, कि वहाँ मत जाना, घर में ही रहना, बाहर नहीं घूमना, बाहर हमारी इज्जत है, जो तुम्हारी गलतीयों के कारण कम नही होनी चाहिए। इस उपन्यास में जैसा ही नाम से ही प्रतीत होता है। *'बाबल तेरा देस में'* में पिता रूपी ईट व गारे से बनाई गई मजबूर दीवारे हैं। इन दिवारों रूपी किले के अन्दर अनेक स्त्री पात्र रहते हैं, जिनमें दादी, जैतूनी, असगरी, जुम्मी, पारो, शकीला, शगुफ्ता, सकीना, जेनब, पैना और मुमताज है। इन सभी को बाहर की दुनिया ने नहीं बल्कि अपनों ने ही कैद कर रखा है। इनमें हाजी चाँदमल, दीन मोहम्मद, हनीफ, फौजी, जगन प्रसाद, मुबारक अली तथा कलन्दर आदि है। इस प्रसंग में असगरी अपनी बहू पारों व चाँदमल की नजदीकियों से परेशान होकर चाँदमल के पास जाकर उसे कुछ इस प्रकार से डॉटती है,

> **"असगरी तो मारे क्रोध के कॉपने लगी, ढैड, तू मेरी बहू की खूसती ए तार-तार करेगो? हाथ तो लगा के देख दारी का ए कच्चो ना चबा जाऊँ। अबके तू मेरे घर मऊँ झाँक के देख जो तेरी दीदान्ने ना फोड दूँ ......तू खूसनी ए तार-तार करेगों।"**
> *(बाबल तेरा देस में, पृ. ३९)*

अत: इस प्रकार के व्यंग्यात्मक शब्दों से असगरी चाँदमल को उलाहना दे रही है। असगरी के मुताबिक चाँदमल उसकी बहु पारो का पीछा करता है। उसे लगता है, कहीं चाँदमल के कारण उसके बेटे का घर न उजड जाए, इसीलिए वह चाँदमल के घर जाकर उस पर व्यंग्यात्मक शब्दभेदी बाणों से बरस पडती है। वह कहती है, कि तू मेरी बहू की इज्जत तार-तार करेगा, तुझमें इतनी हिम्मत है क्या? तू मेरी बहू को एक बार छू कर तो देख तुझे बिन पकाए कच्चा ही खाँ जाऊगी।

> **"हीरा ने कबीर के बारे में जरूर सुन रखा था कि मृत्योपरान्त किस तरह हिन्दू और मुसलमान अनुयायियों मे उसके पंचतत्व में विलीन या सुपुर्द-ए-खाक करने से पहले, उसके पार्थिव शरीर को लेकर खींचतान हुई थी। काले पहाड की देह पर उगी ढाक की लकडियों को बेचकर जीविकोपार्जन करने वाले इस साधारण से**

लकडहारे को भी न तो कभी मन से मेवों ने स्वीकारा, और न ही कभी हिन्दूओं के कभी अपना माना।" *(बाबल तेरा देस में, पृ. ८५)*

इस प्रसंग में हीरा एक पुराना वाकया याद कर रहे हैं, जिसमें एक लकडहारा था। जो मर जाता है, तो उसे न तो मुस्लिम लोग अपना मानते हैं और न ही हिन्दू लोग अपना मानते हैं। हीरा ने कबीर के बारे में भी कुछ इस प्रकास सुन रखा था, कि उसकी मृत्यु होने के पश्चात् उन्हें पंचतत्व में विलीन करने से पहले उनके पार्थिव शरीर को लेकर हिन्दू व मुसलमानों में काफी खीचातानी हुई थी। हिन्दू उन्हें अपनी तरह जलाना चाहते थे और मुसलमान उसे दफन करना चाहते थे। अत: आज एक लकडहारे के शरीर को लेकर ऐसा ही कुछ हो रहा है, दोनों ही उसे अपना मानने से इन्कार कर रहे हैं। इस भारत देश के बँटवारे के बाद में काफी समय तक शेरपुर में एक मन्दिर था, उसमें वहाँ के मेवों द्वारा नमाज पढी जाती थी और दूसरी तरफ लालदासी वहाँ पूजा-अर्चना भी करते थे। धीरें-धीरे-समय बीतता गया, वहाँ हिन्दूओं की संख्या अधिक हो गई, जिससे वहाँ नमाज का पढना बन्द सा हो गया। यहाँ तक कि कुछ समय के पश्चात् मेंवों ने वहाँ पर आना ही बन्द कर दिया। कुछ सालों के व्यतीत हो जाने पर यहाँ की मस्जिद में नमाज दुबारा से शुरू हो गई। जैसे ही हिन्दूओं को इसका पता चला, उन्होंने नमाजियों को नमाज पढने से रोकने की भरपूर कोशिश की। लेकिन मेवों ने उनकी बात नहीं मानी। लालदास मेव था, इसीलिए उनका यह कहना था, कि यहाँ नमाज पढने का उनका पूरा हक है। इस बात के चलते दोनों तरफ से तनाव पैदा हो गया, इस तनाव का प्रमुख केन्द्र बिन्दू नौगाँव कस्बा था। यह मन्दिर बनाम मस्जिद हरियाणा व राजस्थान की सीमा पर है, यहाँ मेवों की संख्या कम है, इसीलिए इस मामले ने ज्यादा आग नहीं पकडी और शान्ति छा गई। अत: 'भगवानदास मोरवाल जी' ने धर्म के प्रति फैले तनाव का भी अंकन इस उपन्यास में किया है। आजादी के बाद भी मुस्लिम परिवेश को लेकर अनेक उपन्यास लिखे गए, जिनमें 'भगवानदास जी' ने काफी सहयोग दिया।

"इस हालत में जैनब दूसरे की ही रहेगी, अख्तर अली का इस पर कोई हक नहीं रहेगा। वैसे वापसी की शक्ल में और भी कई फतवे हैं। मसलन हजरत अली रजि. का फैसला है कि औरत हर हाल में पहले शौहर को मिलेगी, बेशक दूसरे शौहर से बच्चे पैदा हो गए हो। हजरत उस्मान रजि का फैसला यह है कि औरत अगर दूसरा निकाह कर चुकी है और इस बीच पहला शौहर वापिस आ जाए तो उससे यह पूछा जायगा कि उसे बीवी चाहिए या मठ ? अगर उसने बीवी लेने की

गुजारिश की तो उस औरत को दूसरे शौहर से अलग होकर तलाक की इद्‌द्‌त गुजारनी होगी।इद्‌द्‌त पुरी होने के बाद उस पहले शौहर के हवाले तो करा ही दिया जाएगा बल्कि दूसरे शौहर से मह्र भी दिलाया जाएगा।" *(बाबल तेरा देस में , पृ. ४१२)*

इस प्रसंग में एक मुस्लिम स्त्री जैनब का वर्णन किया गया है। उसका शौहर उसे छोडकर कहीं पर चला गया, तो सभी लोग मिलकर अलग-अलग तरह की हिदायतें दे रहे हैं। मजीदन भी अपनी बात कहते हुए कुछ इस प्रकार से कह रहा है, कि जैनब अगर चार साल राह देखने के बाद भी उसका शौहर घर लौटकर नहीं आता, तो उसका दूसरा निकाह कर सकते हैं। अगर समयानुसार वक्त ऐसा ही चला, तो जैनब की दूसरी शादी के पश्चात् अगर उसका पहला शौहर घर आ गया तो, हजरत अली रजिस्टार का फैसला है, कि स्त्री पहले शौहर को ही मिलेगी। उससे यह पूछा जायेगा की उसे पत्नी चाहिए या फिर महनताना चाहिए। अतः इस प्रकार से एक औरत की चाहे इस फैसलें में मर्जी हो या नहीं हो किन्तु उसे समाज के इन नियमों को विवश होकर मानना ही पडता है। कोई उससे यह नहीं पूछता है, कि वह क्या चाहती है, सब अपनी हिदायतें अपनी मर्जी उस पर थोंप देते हैं।

"अन्यायी, जब ऐसी बात है तो पहले माही काम ए कराओ ? वैसे मेरा ख्याल में मास्टरी सू बढिया कोई दूसरी मुलाजमत है भी ना। बस, एक बार कहीं चिपक जाऔ फिर देखो मौज ही मौज है । मदरसा में जाओ या मत जाओ...... जाओ भी तो पढाओ या मत पढाओं। कोई पूछनेवालो ना है।" *(बाबल तेरा देस में , पृ. ३०२)*

इसमें चाँदमल कुछ इस प्रकार से हमारी शिक्षा व्यवस्था व शिक्षकों के ऊपर भारी व्यंग्य कसते हुए कह रहे हैं, कि मुबारक को मास्टर लगवाने का यह काम जल्दी से करवा दो। जहाँ तक चाँदमल का सोचना है, कि उससे अच्छा कोई ओहदा नहीं है अर्थात् मास्टरी से बढिया कोई भी अन्य पद नहीं है। चाँदमल का कहना है, कि बस एक बार कहीं सरकारी शिक्षा विभाग में कही चिपक जाओं उसके पश्चात् देखो कितना आराम ही आराम है अर्थात् सब लोग आराम करने के लिए नौकरी वो भी सरकारी नौकरी करते हैं। यह शिक्षको पर करारा व्यंग्य है। इनका कहना है, कि एक बार बस नौकरी मिल जाए, फिर चाहे वे पढाने के लिए मदरसा जाए या नहीं

सब इनके लिए आसान हो जाता है। चाहे ये जाकर वहा बच्चों को पढाए या नहीं पढाए वह सब इन पर निर्भर करता है। यहाँ कोई बच्चों की जिन्दगी के बारे में नहीं सोचता। मास्टर जी सिर्फ अपना आराम पहले सोचते हैं बाकि सब उसके बाद। अत: साधारण लोगों की नजर में शिक्षक गणों का यही रूप देखने को मिलता है। उनके अनुसार सरकारी नौकरी का अर्थ है, मुफ्त व आराम से रोटी खाना। सभी मानते हैं, कि मास्टर लोग मदरसा न जाकर अपने घर का काम करते हैं, अपनी खेती सभालते हैं। उनके विचार से सालिग्राम सन्नार्थी का पुत्र सरकारी कर्मचारी होने पर कैसी मौज कर रहा है। सारे दिन मदरसा में पढाने की बजाय गप्पे लडातें रहते हैं या फिर चाय की दूकान पर ही मीलते हैं। अर्थात् अपने व्यंग्यात्मक तरीके से 'भगवानदास मोरवाल जी' ने यह बताने की कोशिश की है, कि आज की शिक्षा प्रणाली व अन्य सरकारी नौकरियों में सख्ती की जरूरत है। उन्हें कर्मचारियों के आराम पर रोक लगानी चाहिए। अत: 'भगवानदास जी' इसमें अन्धी शिक्षा प्रणाली व औरत के ऊपर लगे नियमों के प्रतिबन्धों पर करारा व्यंग्य किया है।

'भगवानदास मोरवाल जी' का तीसरा उपन्यास *'रेत'* सन् २००८ ई. में प्रकाशित हुआ। 'मोरवाल जी' ने हमारी आधुनिक सामाजिक व्यवस्था व समस्याओं को कथ्य विषय बनाकर उपन्यास का अंकन किया है। मौजूदा समाज में जो भी असंगतियाँ है, उन पर इनकी लेखनी अच्छी चली है। इन्होंने अपने उपन्यासों में कहीं मुस्लिम मेव जाति को अपना विषय बनाया है, तो कहीं *'रेत'* उपन्यास में देखा जाए, तो कंजर जनजाति जिसका आशय होता है, कि वन को भ्रमण करने वाली जनजाति जो स्थिर नहीं रहती, बल्कि यहाँ से वहाँ घूमती ही रहती हैं, उसका वर्णन किया है। यह एक स्वतन्त्र जनजाति है। यह आज कम मात्रा में है, किन्तु कहीं-कहीं देखने को मिल जाती हैं। कंजर जनजाति आज भी अपनी अस्मिता और अस्तित्व को बचाये रखने के लिए संघर्षरत है। वह समस्त रूप से विलुप्त नहीं होना चाहती, बल्कि अपनी मौजूदगी बनाये रखना चाहती है। इन्हीं सब का वर्णन *'रेत'* में किया गया है। इसमें कंजर जनजाति के जनक गुरू और माँ नालिन्या में इनकी उत्पत्ति मानी जाती है। इस उपन्यास में एक ऐसी अबला स्त्री को मुख्य पात्र विषय बनाया है, जो चारों तरफ से अपनी सास-ननदों से घीरी हुई है। वह स्वयं उनके आधीन है, ना ही स्वयं अपना कुछ फैसला ले सकती है, जैसा उनकी ननद कहती है, वैसा ही उसे चाहते या फिर न चाहते हुए भी करना पडता है। गाजूकी इस जगह का नाम है, यहाँ एक कमला सदन नामक घर है। इसमें कमला नाम की औरत का पूरे घर पर दबदबा चलता है।

इसमें एक तरफ जहाँ कमला बुआ, सुशील, माया, रूक्मिणी, वंदना, पूनम हैं, तो दूसरी तरफ संतो और अनिता भाभी है। इस उपन्यास में बुआ शब्द का आशय है, पूरे परिवार की सर्वेसर्वा या फिर पिता के मरने के बाद जो उस परिवार का वंशानुगत सम्पत्ति का रखवाला होता है, उसका या फिर माता का वर्चस्व भी धीरे-धीरे कम करने वाली सन्तान ही बुआ है। यहाँ पर भाभी का आशय है, कि घरों की चारदीवारी में घुटने को मजबुर व एक दूसरे दर्जे की सदस्या। एक ऐसा सदस्य जो उस परिवार का होते हुए भी उसका नहीं है, अर्थात् उस परिवार में उसका अस्तित्व न होने के बराबर जान पडता है।

> **"ऐसे ही आदमी को निरभाग और लालची कहा जाता है बैरजी, जो सोने का अण्डा देनेवाली मुर्गी को इतने सस्ते में दे रहा है। इतनी रकम तो यह दो-ढाई बरस में कूटकर दे देती, नैन-नक्श ना होते तो मजबूरी थी। पता ना इसकी कैसे मति मारी गई। मरी कैसे भाभी बनने के लिए राजी हो गई। मरे, बीस-पच्चीस हजार तो यह खडे-खडे मत्था ढकाई के धरवा लेती।"** *(रेत, पृ.२२)*

> **"क्यों नैन-नक्शवाली नहीं करती हैं ब्याह ? क्या मिलता है ब्याह करके । जिन्दगी भर खसम और औलाद के साथ-साथ भाभी बनी सास-ननदों की चाकरी ही तो करनी पडती है। मरी, बुआ बनी रहती तो उमर भर मजे करती।"** *(रेत, पृ. २२)*

इस प्रसंग में बुआ और वैद्य जी ब्याह पक्का करके आ रहे हैं। इसी विवाह के लिए बुआ ने पंचो की बात भी मान ली और लडकी के पिता सिकंदर को कुछ रूपये और दे दीये। दोनों जब वापिस घर लौट रहे हैं, तब बुआजी कुछ इस प्रकार कहती है – वैद्यजी ऐसे ही आदमी को बिना भाग का इन्सान कहाँ जाता है अर्थात् उनका यह इसारा लडकी के पिता सिकन्दर की तरफ है, कि सिकन्दर अपनी अच्छी व सुन्दर दीखने वाली पुत्री को बडे ही सस्ते भाव में दे रहा है। उसकी बेटी तो उसके लिए सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी साबित हो सकती थी। यह रकम जो मैंने सिकंदर को दी, वह रकम तो यह दो से तीन साल में ही कमा कर दे देती। इसमें स्पष्ट रूप से बताया गया है, कि वह भाभी बनने के लिए तैयार है, तो उसे जीवन भर सास-ननदों, पति व बच्चों की जी हूजूरी करनी पडेगी। अगर बुआ बनती तो मजे से पैसे कमाती और ऐसे ही जीवन व्यतीत हो जाता। कंजर जाति में कमला बुआ की ही तरह कुछ औरतें तो अपने काम में लग जाती है, तो कुछ वंश चलते रहने के लिए ब्याह करती है। इस

जनजाति में एक और चीज नई देखने को मिल रही है, कि लडकी का पिता पैसे लेकर लडकी का ब्याह करता है। एक तरह से देखे तो मोल–भाव करके वह अपनी बेटी को बेच देता है। जबकि यह ज्यादा देखने को मिलता है, कि लडकी वाले लडकों वालों को धन–सम्पति देते हैं, किन्तु यहा लडके के विवाह हेतू लडकी के पिता को धन–सम्पति देनी पड रही है। यह समाज पर एक करारा व्यंग्य है, कि अगर कोई शादी करे तो सभी परिवार वालों के लिए वह नौकर का काम करती है। बस घर में वह नौकर बनकर ही रह जाती है। उसका अपनी कोई पहचान नहीं होती, बल्कि वह दूसरे नामी लोगों के साथ दबी हुई सी दिखाई पडती है।

> **"कंजरों में यही तो सबसे भारी काम है बैद्जी। तुम इज्जतदारों की तरह इत्ता आसान नहीं ब्याहता को छोडना। मेरी इतनी उमर हो गई है पर मैंने आज तक किसी कंजर को अपनी औरत छोडते हुए नहीं देखा। एक ही छत के नीचे दो–दो रख लेगा, पर पहली की नहीं छोडेगा।"** *(रेत, पृ.१८२)*

इसमें कमला बुआ वैद्जी से कह रही हैं, कि कंजरों में कोई ब्याहता औरत कभी नहीं भागती है। यह बुहत ही बडा काम है, जिसको बहुत कम लोग करते हैं। तुम लोग इज्जतदार हो, तुमको बडा आसान होता है, ब्याहता को छोड देना, किन्तु हमारे लिए यह सरल नहीं है। मैंने इतनी दुनिया देखी है, किन्तु कहीं भी, कभी भी आज तक मैने किसी कंजर को अपनी पत्नी को त्यागते हुए नहीं देखा। यहाँ के कंजर एक ही घर में दो–दो पत्नीयाँ रख लेगा, किन्तु अपनी पहली पत्नी को नही छोडता है। अतः इस प्रकार कंजर जाति के बारे में यह विशेष रूप से बताया गया है, कि यहाँ पर अन्य जातियों की तरह अपनी पत्नीयों को नहीं छोडा जाता है। इस उपन्यास में एक गाजूकी गाँव है, यहाँ पर कंजरो की बस्ती है। वहाँ पर एक कमला सदन नाम का भवन है, जहाँ अनेक खिलावडी रहती है। उसमें एक भाभी भी है, जो अपनी सास व ननदों की चाकरी करते–करते थक जाती है और विवश होकर भाग जाती है। वैद् जी कज्जा है, इज्जतदार है, किन्तु फिर भी बिना किसी लालच के कमला सदन में सभी का सहयोग करने आते हैं। हम कह सकते हैं, कि उन्हें हर बात बताई जाती है, एकदम घर जैसे ही है। इसमें औरत की विवशता भरी जिन्दगी के दर्शन होते हैं। एक स्त्री हमेशा स्वयं की मर्जी से नहीं, बल्कि उसे औरो की मर्जी से चलना होता है। इसकी एक पात्र रूक्मिणी विद्यानसभा का चुनाव लडती है और अन्त में जीत उसी की होती है। अर्थात् औरत अगर एक लक्ष्य ठान ले तो, उसे पाना उसका बडा सपना बन जाता है, वह उसे पाकर ही रहती है।

'रेत' उपन्यास भारतीय समाज के उस बिना सुलझे हुए व बिना कहे हुए अर्न्तविरोधों की कहानी है। यह कहानी वैद्जी की साईकिल से शुरू होकर गाजूकी नदी के घने जंगलों से होती हुई आगे बढती है। इसमें रूक्मिणी कंजरी जो अन्त में सफलताओं के शिखर पर बैठी हुई है, उसका अंकन अच्छा बन पडा है।

२.१३ कमलेश्वर

२.१३.१ कमलेश्वर का परिचय

'कमलेश्वर जी' का जन्म ६ जनवरी सन् १९३२ ई. को उत्तर प्रदेश के मैनपुरी में हुआ। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. किया। 'कमलेश्वर जी' ने कहानी व उपन्यास के क्षेत्र में अद्भुत सफलता प्राप्त की है। 'कमलेश्वर' ने अपने उपन्यासों में ज्यादातर मध्यवर्ग के जीवन की समस्याओं को कथ्य विषय बनाया है। 'कमलेश्वर' भी 'राजेन्द्र यादव', 'रांगेय राधव', 'राजेन्द्र अवस्थी', 'कृष्णा सोबती' आदि उन हिन्दी उपन्यासकारों में से हैं, जिन्होंने अपनी लम्बी कहानियों के शीर्षक बदलकर उपन्यास का नाम देकर प्रकाशित किया है। 'कमलेश्वर जी' को शलाका पुरस्कार, शिवपूजन सहाय शिखर सम्मान, साहित्य अकादमी पुरस्कार आदि प्रमुख सम्मान प्राप्त हुए।

२.१३.२ प्रमुख साहित्य / कृतियाँ

'कमलेश्वर जी' की प्रकाशित प्रमुख रचनाओ में *'राजा निरबंसिया और कस्बे का आदमी', 'मांस का दरिया', 'खोई हुई दिशाएँ', 'बयान', 'जॉर्ज पंचम की नाक', 'आजादी मुबारक', 'कोहरा', 'कितने अच्छे दिन', 'मेरी प्रिय कहानियाँ', 'मेरी प्रेम कहानियाँ'* आदि **कहानी संग्रह;** *'एक सडक', 'सत्तावन गलियाँ', 'डाल बंगला', 'तीसरा आदमी', 'समुद्र में खोया हुआ आदमी', 'लौटे हुए मुसाफिर', 'काली आँधी', 'वही बात', 'आगामी अतीत', 'सुबह दोपहर शाम', 'एक और चन्द्रकान्ता', 'कितने पाकिस्तान', 'पति-पत्नी और वह'* आदि प्रमुख उपन्यास; *'नई कहानी की भूमिका', 'नई कहानी के बाद', 'मेरा पन्ना', 'दलित साहित्य की भूमिका'* आदि प्रमुख **समीक्षाएँ;** *'अधूरी आवाज', 'चारूलता', 'रेगिस्तान', 'कमलेश्वर के बाल नाटक'* आदि प्रमुख **नाटक;** *'खंडित यात्राएँ', 'अपनी निगाह में'* आदि प्रमुख **यात्रा-संस्मरण;** *'जो मैंने किया', 'यादों के चिराग', 'जलती हुई नदी'* प्रमुख **आत्मकथा** है।

'कमलेश्वर जी' ने सम्पादन कार्य भी किया, जिनमें से *'मेरा हमदम-मेरा दोस्त', 'अन्य संस्मरण', 'समान्तर-१', 'गर्दिश के दिन', 'मराठी कहानियाँ', 'तेलुगु कहानियाँ', 'पंजाबी कहानियाँ', 'उर्दू कहानियाँ'* आदि प्रमुख है।

'कमलेश्वर जी' का *'कितने पाकिस्तान'* उपन्यास ही वृहद् उपन्यासों की श्रेणी में आता है बाकि सभी उपन्यास लघु उपन्यास की श्रेणी में आते हैं। मध्यम वर्ग का इन्सान किस तरह से आधुनिक संस्कृति व सभ्यता की दौड में अपनी सभ्यता को छोडता हुआ जा रहा है, *'समुद्र में खोया हुआ आदमी'* (१९६७) उपन्यास का कथ्य विषय यही मध्यवर्गीय जीवन ही है, जिसकी विभिन्न समस्याओं को 'कमलेश्र जी' ने अपने उपन्यास में अंकन किया है। *'काली आँधी'* (१९७४) उपन्यास में 'कमलेश्वर जी' ने मध्यम वर्ग की नारी का अंकन किया है। इसमें एक सामान्य वर्ग की स्त्री राजनीति में प्रवेश करती है, किन्तु राजनीति में आने के बाद एक स्त्री के राजनीतिक व पारिवारिक दायित्वों के निर्वाह का वर्णन किया है। परिवार व राजनीति दोनों के बीच हमेंशा द्वन्द चलता रहता है और इन दोनों के मध्य में एक स्त्री पीसती हुई चली जाती है। एक स्त्री का बाहर के साथ-साथ अपने परिवारवालों को भी संभालना पडता है। अत: इन्हीं सभी का चित्रण 'कमलेश्वर जी' ने *'काली आँधी'* में किया है।

'तीसरा आदमी' का प्रकाशन सन् १९७६ ई. में हुआ। इस उपन्यास का प्रमुख कथ्य विषय भी मध्यम वर्ग को लेकर ही कहा गया है। *'तीसरा आदमी'* उपन्यास में एक मध्यवर्गीय दम्पत्ति के वैवाहिक जीवन में किसी तीसरे आदमी के प्रवेश लेने की कहानी है। अर्थात् शादी होने के बाद पति व पत्नी दोनों एक-दूसरे के पूरक होते हैं, किन्तु इसी बीच कोई तीसरा आदमी उनकी वैवाहिक जिन्दगी में दखल देने लगे तो वह फिर अनेक समस्याओं का कारण बन जाता है। आजकल शहरी जीवन में यह चलन कुछ बढता चला जा रहा है, कि पति पत्नी दोनों में छोटी-छोटी नासमझी को लेकर कलह होता रहता है। आर्थिक दबाव के चलते तीसरे आदमी का प्रवेश होंने से दोनों के सम्बन्धों में दरारें पडने लगती है और अन्त में पति ही तीसरा आदमी बनकर रह जाता है। अत: इस बहुत कचोटने वाली समस्याओं का अंकन 'कमलेश्वर जी' ने इस उपन्यास में किया है।

'वही बात' उपन्यास सन् १९८० ई. में प्रकाशित हुआ। 'कमलेश्वर जी' के अपने ज्यादातर उपन्यासों में यह समानता देखने को मिलती है, कि उन्होंने अपना कथ्य विषय मध्यवर्गीय जीवन को ही बनाया है। *'वही बात'* उपन्यास में भी एक मध्यवर्ग की पत्नी अपने काम में अति व्यस्त इंजीनियर पति से परेशान होकर अपने बॉस से सम्बन्ध बना लेती है। अत: हम देखते हैं, कि अगर पति अपनी पत्नी को अपनी व्यस्तता के चलते समय नहीं दे पाता है, तो पत्नी किसी और पुरूष की तलाश में अपने बॉस को चुनती है। धीरे-धीरे वह अपने बॉस से भी

ऊब कर अपने पति की तरफ वापस लौट आती है। उसे पता चलता है, कि वह उसके बारे में कितना ध्यान रखता है, अन्य पुरूष अपनी स्वार्थ सिद्धी के अलावा नहीं रखता हैं।

'आगामी अतीत' (१९७६) उपन्यास में भी 'कमलेश्वर जी' ने पुरूष व औरत के सम्बन्धों को ही प्रस्तुत किया है। इसमें उपन्यासकार अपनें कथा-पात्रों के माध्यम से मध्यमवर्ग के जीवन की विसंगतियों और भटकाव की कहानी को प्रस्तुत करते हैं। *'लौटे हुए मुसाफिर'* (१९६१) में भी 'कमलेश्वर' ने साम्प्रदायिक समस्याओं का चित्रण प्रमुख रूप से किया है। साम्प्रदायिक दंगों से व्याप्त हिंसा का अंकन किया गया है। इसके साथ-साथ पाकिस्तान का नाम लेकर धोखा दिए गए मुस्लिम लोगों के मोहभंग व उनके वापस लौटने की मजबूरी को दर्शाया गया है। देश विभाजन के समय सभी मुसलमानों को पाकिस्तान जाने के लिए कहा, किन्तु वहाँ जाकर उन्हें मोहभंग हो गया और मजबूरन उन्हें वापिस भारत आना पडा। उनकी इसी विवशता का चित्रण लौटे हुए मुसाफिर में किया गया है।

'सुबह... दोपहर... शाम...' (१९८२) उपन्यास में भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में एक क्रान्तिकारी दल की क्या भूमिका थी, उसका वर्णन किया गया है। अर्थात् स्वतन्त्रता में अनेक क्रान्तिकारियों ने अपने प्राण गवाँ दिए। उनका जज्बा देश को आजाद करने का था, फिर चाहे वह क्रान्तिकारी तरीके से ही क्यों न हो। 'कमलेश्वर जी' को पात्रों के मनोवैज्ञानिक पलों के पकडने में महत्वपूर्ण सफलता मिली है। 'कमलेश्वर जी' ने मध्यमवर्गीय जीवन की मुसीबतों व साम्प्रदायिकता और स्वतन्त्रता की लडाई से जुडे प्रसंगो को अच्छे अन्दाज में प्रस्तुत किया है। आजादी के समय, जिसने भी उसे प्राप्त करने में क्रान्तिकारी तरीकों से देश की मदद की, उनका बडा ही सुन्दर चित्रण 'कमलेश्वर जी' ने अपने उपन्यास *'सुबह... दोपहर... शाम...'* में किया है।

'कितने पाकिस्तान' का प्रकाशन सन् २००० ई. में हुआ। इस उपन्यास में 'कमलेश्वर जी' ने अपने फिल्मी पंतकथा वाले उपन्यासकार की छवि को तोडने की कोशिश की है। इस उपन्यास में धर्म, राजनीति, भौतिक सुखों की दौड आदि के चलते व देश को, दुनिया को, मानवता को बाँटने, एक-दूसरे से अलग करने, लहूलुहान करने की राक्षसी प्रवृति का अंकन किया है। 'कमलेश्वर जी' ने इस उपन्यास में संवेदना के स्थान पर आवेग को प्रधानता दी है और विवेक अर्थात् बुद्धिमानी के स्थान पर आवेश को अधिक महत्व दिया है। उपन्यासकार का

भारतीय इतिहास का ज्ञान पढने वालों को अभिभूत करने वाला जान पडता है। इतिहास में किस–किस समय क्या–क्या घटित हुआ, उसका बडा ही सजीव चित्रण किया गया है। जब देश स्वतन्त्र हुआ उसी के साथ विभाजन भी हो गया, उस समय विद्रोहियों ने मानव को मानव से अलग करने की भरपूर कोशिश की, साथ ही साथ उसकी मानवता व संवेदना को लहूलुहान करने की उसकी, इस प्रवृति का वर्णन *'कितने पाकिस्तान'* में किया गया है। 'कमलेश्वर जी' ने अपने उपन्यास *'कितने पाकिस्तान'* में मुगलकालीन इतिहास का भी उपयोग किया है। उनके उपन्यास में औरंगजेब शासक धर्म और इस्लाम के मूल्यों का अपने हित में उपयोग करने वाला व्यवहारिक रूप में बताया गया है तथा दाराशिकोह शासक एक स्वप्नदर्शी, उदारतावादी और मानवीय मूल्यों को इज्जत देने वाला शहजादा बताया है। उपन्यासकार ने इस कथा में ऐसा संघर्ष दिखलाया है, जिसमें सत्ता को लेकर लडाई होती है, इसमें हिन्दू व सामन्तों की कमजोरी की वजह से संघर्ष में दारा की हार हुई।

'कितने पाकिस्तान' के बाद 'कमलेश्वर जी' का २००६ ई. में *'पति–पत्नी और वह'* उपन्यास प्रकाशित हुआ। उपन्यासकार 'कमलेश्वर' का यह उपन्यास समकालीन समाज में पुरूष की मानसिकता को सबके सामने उघाडकर रख देता है। 'कमलेश्वर जी' ने इस उपन्यास के द्वारा यह बताया गया है, कि स्त्री चाहे पत्नी हो या प्रेमिका हर तरह से पुरूषों द्वारा छली जाती है। कुछ पुरूष देहलोलुप व वासना में लिप्त और कुंठा से ग्रस्त होते हैं उन्हीं को अपने उपन्यास का कथ्य विषय बनाया है। इस उपन्यास का कथ्य थोडा हलका–फुलका व रोमांटिकता से भरापूरा है। आज भी इस व्यस्तता भरी जिन्दगी में स्त्रियों की नियति और पुरूष की लालची प्रवृति को उपन्यासकार ने इस उपन्यास में अंकित किया है। इसमें रंजीत, निर्मला, शारदा पात्रों को विशेष पात्रों में रखा गया है। इसमें शादी के पश्चात् पति अपनी पत्नी के अलावा किसी अन्य औरत के साथ प्रेम करने लगता है उसी का अंकन इसमें मिलता है।

> **"या अल्लाह, जिस नाजनी का दुपट्‌या इतना खूबसूरत है, खुदा जाने वह कितनी हसीन होगी, दूर्रानी के होंठो से बेसाख्त निकला, आप बहुत ही खुशनसीब हैं बिरादर... अपना तो नसीब ही खोटा है। जनाब को तो दो मीटर लम्बा खूबसूरत दुपट्‌या निशानी के तौर पर नसीब हो गया लेकिन बदबख्त दूर्रानी को तो आज तक किसी बदसूरत लडकी का बालिश्त–भर का फटा–पुराना रूमाल तक नसीब नहीं**

हुआ। आपकी खुशबख्ती पर इस नाचीज को रश्क हो रहा है बिरादर खैर उनका नाम-पता मालूम किया ?" *(पति-पत्नी और वह, पृ. २०)*

इसमें रंजीत और दूर्रानी दोनों कॉलेज व ऑफिस में हमेशा साथ-साथ रहे हैं, काफी अच्छे दोस्त है दोनों। रंजीत अपनी तन्हाईयों को लेकर काफी परेशान था। घर जाते ही सन्नाटा उसे काटने को दौडता था। अतः सब उसने अपनी तकलीफ अपने खास दोस्त दूर्रानी को बताई, तो उसने उसे अंजीर खाने अर्थात् विवाह करने की सलाह दी। उन दिनों के दौरान ही एक दिन रंजीत का किसी लडकी से साइकिल भिडन्त का किस्सा हो गया। लडकी बडी ही सुन्दर थी। उसका दुपट्टा रंजीत के पास रह गया था। अतः दूर्रानी ने उसका दुपट्टा देखकर यह वाक्य कहे रहे हैं - कि हे भगवान पता नहीं, जिसका दुपट्टा इतना सुन्दर है, वह स्वयं कितनी सुन्दर होगी। वह रंजीत को कहता है, कि तु तो भाई बडा ही अच्छा नसीब वाला है, जो तुमसे एक सुन्दर लडकी टकराई और साथ ही साथ दुपट्टा भी निशानी के तौर पर तेरे पास ही छोड दिया। इस मामले में हम तो बहुत गन्दा नसीब लेकर इस दुनिया में आए है। आज तक किसी भद्दी लडकी ने भी हमें अपना दुपट्टा नहीं दिया है। अतः इसमें पुरूष की लोलुपी मानसिकता का आभाष हमें दिखाई पडता है। रंजीत धीरे-धीरे शारदा से प्यार करने लगा और वह ज्यादा दिन इन्तजार नहीं कर सकता था। अतः वह शारदा के घर के सामने से ही उसकी एक झलक पाने के लिए जाया करता था। शारदा को पाना ही उसका पहला और आखिरी मकसद बन गया था। वह शारदा से मिलने के तरह-तरह के बहाने विचारता रहता था। शादी के बाद वह शारदा से दोबारा मिला और हँसी खुशी का माहौल बना रहा। रंजीत को दूर्रानी ने अब लडकी से साफ तौर से बात करने को कहीं तो रंजीत शारदा के घर जा पहुँचा और शारदा से कुछ इस प्रकार कहा -

"बुजुर्गो ने न जाने, कब कहा होगा। लेकिन वह आज भी उतना ही सच है जितना सच उनके जमाने में रहा होगा, रंजीत ने ड्राइंगरूम पर चारों और नजर दौडाते हुए कहा, बुजुर्गो ने कहा था कि दुनिया का कोई भी इन्सान भले ही वह औरत हो या मर्द अपनी जिन्दगी के पहले-पहले प्यार को कभी नहीं भूल पाता है। मैं तुम्हें अपने दिल की गहराईयों से प्यार करने लगा हूँ शारदा।" *(पति-पत्नी और वह, पृ. ३२)*

रंजीत इन पक्तियों में बुजुर्गो की कही हुई बात को सही ठहराते हुए अपने प्यार का इजहार शारदा से करते हैं। साथ ही शारदा के पापा से शादी की रजामन्दी भी ले लेता है। दोनों

का विवाह बडी ही धूमधाम से सम्पन्न होता है। किन्तु कुछ समय पश्चात् निर्मला नाम की लडकी रंजीत के ऑफिस में काम करने आती है और वह उसकी और खींचता चला जाता है। ज्यादा से ज्यादा समय वह निर्मला के साथ गुजराना चाहता है। शारदा का मोह धीरे-धीरे कम होता चला जाता है। शारदा को निर्मला के बारे में सब पता चल गया, फिर भी उसने धेर्य नहीं खोया। शारदा के स्थान पर अगर दूसरी औरत होती, तो तलाक देने के बारे में सोचती, किन्तु शारदा बेहद समझदार औरत थी, इसीलिए उसने स्थिति संभालने की कोशिश की।

> **"हाँ, लेकिन कसूर मेरा नहीं है ? निर्मला बोली, मेरा वश चलता तो मैं कभी नौकरी न करती – पर हमारे जैसे घरों की हालत का आप अन्दाजा नहीं लगा सकती। जरूरते हमें एक बार एक ओर धकेलती हैं, दूसरी बार दूसरी तरफ लेकिन जहाँ हमारी जरूरते एक साथ पूरी हो जाती हैं वहीं हम बेबस हो जाती हैं – मैं भी बेबस हो गई थी पर सच कहूँ अगर मुझे सच्चाई मालूम होती तो यह सब कभी न होता। पर अब तो आपसे सिर्फ माफी ही माँग सकती हूँ.... सिर्फ माफी.... आपका घर बसा रहे.... आबाद रहे, मैं इसी में खुश रह लूँगी। आप मुझे माफ कर देंगी तो मेरे मन को शान्ति मिल जाएगी, चैन मिल जाएगा ? आपकी माफी मुझे इस सबको भूल पाने की ताकत दे देंगी।"** *(पति-पत्नी और वह, पृ. ११८)*

अत: निर्मला शारदा से कह रहीं है, कि रंजीत ने उसे यह कहकर की उसकी पत्नी बहुत ज्यादा बीमार रहती है, फंसाया हैं। अगर उसे पता होता, कि वह सच नहीं बोल रहा, बल्कि सच्चाई कुछ और है, तो वह ऐसा हरगिज नहीं करती। ऑफिस में काम करना उसकी विवशता है, क्योंकि आर्थिक मजबूरियाँ हम जैसे मध्यमवर्ग के लोगों से यह सब करवा देती है। मैं आपसे इस गुनाह के लिए माफी चाहती हूँ, ताकि मेरे दिल का बोझ कम हो जाए। आपका घर हमेशा आबाद रहे व खुशीयाँ आप लोगों के साथ रहे बस इसी में मुझे शान्ति है।

> **"और बेटी, एक बात और भी गाँठ बाँध लो – औरत किसी भी हालत में कमजोर नहीं होती। मर्द में इतनी ताकत नहीं होती कि वह औरत की तरफ आँख तक उठाकर देख सकें। मेरी एक आवाज सुनतें ही अपने आप को शेर खाँ समझने वाला राबर्ट किस तरह दुम दबाकर भाग गया ?"** *(पति-पत्नी और वह, पृ. १६७)*

इसमें नीना नाम की युवती राबर्ट से प्रेम करती है। वह अपनी व राबर्ट की शादी की खातिर रंजीत को फँसाने व उससे पैसा हडपने में कामयाब हो जाती है, किन्तु बाद में राबर्ट उसे और रूपयों के लिए डराने व धमकाने लगता है, जिससे तंग आकर वह रूबी डिसिल्वा आंटी के पास चली आती है। रूबी नीना को समझाते हुए कह रही है, कि बेटी एक बात हमेशा जीवन भर याद रखना कि एक स्त्री कभी भी किसी भी स्थिति में कमजोर नहीं होती है। एक पुरूष में इतनी शक्ति नहीं होती कि वह एक नारी की तरफ आँख उठाकर देख पाए। तुमने देखा नहीं में भी एक स्त्री हुँ और मेरी आवाज सुनते ही वह ऐसा यहाँ से भाग गया। 'कमलेश्वरजी' के अनुसार औरत में बहुत ताकत होती है। जिससे वह किसी को भी हरा सकती है। रूबी डिसिल्वा उससे आगे कहती है, कि मेरा तो अपने जीवन में ऐसे बदमासो से अनेको बार सामना हो चुका है। किन्तु मैंने कभी भी हार नहीं मानी। मेरे पति की भी तानाशाही मैंने कभी भी सहन नहीं की, बल्कि उन्हें मैंने साफ-साफ कह दिया था कि कानून के हिसाब में हम दोनों एक समान है। दोनों को बराबर अधिकार प्राप्त है, कोई बडा या फिर छोटा नहीं है। मैं हिसाब से आपकी पत्नी हूँ, मुझे गुलाम समझने की गलती मत करना। मेरा जीवन है, मुझे अपनी मर्जी से इसे व्यतीत करना का पूरा-पूरा हक है। उस नारी को मैं नारी नहीं मानती जो पुरूष की हर ज्यादती को सहन करती रोती रहें। वह कमजोर है। औरत ज्वालामुखी का ही रूप होती है, जो एक बार फट पडे तो सर्वनाश में बदल जाता है। 'कमलेश्वर जी' अपने उपन्यास में उन भटकने वाले नौजवानों को रंजीत के माध्यम से यह सन्देश देना चाहते हैं, कि हमें जो मिला उसी को सभाँल कर ज्यादा की आशा नहीं करनी चाहिए। औरत एक ऐसी अबूझ पहेली है, जो अगर प्यार भी अधिक करती है, तो उसका गुस्सा भी अधिक होता है। हमें अपना जीवन अपनी पत्नी के साथ ही हँसी खुशी से बीताना चाहिए।

अत: इस प्रकार हमने सत्तर के दशक के पश्चात् के प्रमुख उपन्यासकारों व उपन्यासों दोनों का ही अध्ययन किया। इन सभी उपन्यासकारों की केन्द्रीय सोच में दलित चेतना, साम्प्रदायिकता, शहरीकरण, स्त्री विषयक ,नवयुवक वर्ग का आक्रोश तथा मजदूरो का शोषण आदि को प्रमुखता दी गयी है।